GL SANS 294.5921
VED

127002
LBSNAA

ओ३म्

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः

दशमो भागः ।

आख्यातिकः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः । पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायाश्च

दशमम्पुस्तकम् ।

सर्वथा राजनियमेनियोजितः

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

संवत् १९५४

—(:o:)—

Registered under sections 18 and 19 of Act XXV of 1867.

द्वितीयवार ५०० | 2nd Edition 500 } Vedic Press Ajmere 1898. { मूल्य ।=)6 | Price-1-6-6

॥ विषय सूचीपत्रम् ॥

ओ३म्

अथ भूमिका

यह अष्टाध्यायी का छठा भाग और पठन पाठन व्यवस्था में आठवां पुस्तक है। आख्यात उस को कहते हैं कि जो समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्म्म, कर्त्ता, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल, एक, द्वि और बहुत अर्थों के वाचक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य करके आख्यात शब्दों ही का व्याख्यान किया है इस से इस को आख्यातिक कहते हैं। (प्रश्न) धातु किन को कहते हैं (उत्तर) जो सत्ता आदि विविध प्रकार के अर्थों को धारण करें (प्र०) वे कौन हैं (उ०) भू आदि शब्द (प्र०) भू आदि शब्द कै प्रकार के होते हैं (उ०) दो प्रकार के एक सामान्यार्थवाची और दूसरे विशेषार्थवाची। सामान्यार्थवाची उन को कहते हैं कि जिन का योग सब विशेषार्थवाचकों के साथ रहे जैसे (योऽस्ति स भवति। यो भवति स करोति) जो है सो होता और जो होता है सो ही करता है और जो नहीं है उस का होना क्या और जो नहीं होता उस के करने का तो क्या ही सम्भव है। दूसरे विशेषार्थवाचक उन को कहते हैं कि जिन का प्रयोग विशेष व्यवहारों में किया जावे जैसे (देवदत्तः किं करोति। स ब्रूते पचति भुंक्ते पठति ददाति वा इत्यादि) जैसे किसी से किसी ने पूंछा कि देवदत्त क्या करता है वह उत्तर देवे कि पकाता भोजन करता पढ़ता अथवा दान देता है (प्रं०) आख्यात का क्या लक्षण है (उ०) (भावप्रधानमाख्यातम्) जो धातु से परे लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश किये जाते हैं वे भावप्रधान अर्थात् भू आदि धातुओं के सत्ता आदि अर्थों के वाचक होते हैं उन्हीं को आख्यात कहते हैं (प्र०) कितने अर्थों में लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश होते हैं (उ०) तीन अर्थात् भाव कर्म्म और कर्त्ता अर्थों में। भाव दो प्रकार का होता है एक आभ्यन्तर, दूसरा बाह्य। आभ्यन्तर भाव उस को कहते हैं कि जो धात्वर्थमात्र में स्थित होकर सामान्य अर्थ का वाचक होता है। जिस के एक होने से एक ही वचन होता है जैसे (आस्यते भवता भवद्भ्यां भवद्भिर्वा। आसितव्यम्। भवितव्यम्। इत्यादि) इस में कदापि द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग नहीं हो सकता। और बाह्यभाव उस को कहते हैं कि जिस में एक द्वि और बहुवचन के प्रयोग होवें जैसे (पच्यते ओदनः। पच्येते ओदनौ। पच्यन्ते ओदना इति। कृद्विहितो भावो द्रव्यवद्भवति। महाभाष्य अ० ३। पा० १।

सू० ६७ ॥) द्रव्यों के समान इस के अनेक प्रकार होने से एक द्वि और बहुवचनांत प्रयोग होते हैं जैसे (भावः । भावौ । भावाः । पाकः । पाकौ । पाकाः । इत्यादि) कर्म्म उस को कहते हैं कि जो कर्त्ता के करने से ही किया जाय जैसे (देवदत्तः कटं करोतीत्यादि) यहां कर्त्ता के किये विना चटाई कदापि नहीं बन सकती । कर्त्ता उस को कहते हैं कि जो स्वाधीन साधनों से युक्त हो कर क्रिया करने में स्वतन्त्र होवे जैसे देवदत्त कर्त्ता चटाई कर्म्म और करना क्रिया है इस में विशेष यह है कि (इदं विचार्य्यते । भावकर्मकर्त्तारः सार्वधातुकार्था वा स्युर्विकरणार्था वेति । एवं तर्हीदं स्यात् । यदा भावकर्मणोर्लस्तदा कर्त्तरि विकरणः । यदा कर्त्तरि लस्तदा भावकर्मणोर्विकरणः) महाभाष्य अ० ३ । पा० १ । सू० ६७ ॥ यह विचारना चाहिये कि भाव, कर्म और कर्त्ता अर्थों में तिङ् प्रत्यय हों वा विकरण शप् आदि होवें । इस की व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्त्ता में लकार हों तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें । अर्थात् एक तिङन्तक्रिया में दोनों अर्थ रहें, जैसे–ग्रामं गच्छति । यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये । इसी प्रकार सर्वत्र जानो (प्र०) किन धातुओं से लकार किन अर्थों में होते हैं (उ०) अकर्म्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में तथा सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में होते हैं (प्र०) अकर्म्मक और सकर्म्मक धातुओं का क्या लक्षण है (उ०) (कर्म्मस्थभावकानां कर्म्मस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्म्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्मवन्मा भूदिति । कर्म्मस्थभावकानाम् । आसयति देवदत्तं, शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम् । कर्म्मस्थक्रियाणाम् । गामवरुणद्धि । करोति कटम् । पचत्योदनम् । कर्तृस्थभावकानाम् । चिन्तयति, मन्त्रयते । कर्तृस्थक्रियाणाम् । गच्छति धावति हसति) महाभाष्य अ० ३ । पा० १ । सू० ८७ । आ० ५ । धातु दो प्रकार के होते हैं एक सकर्म्मक, दूसरे अकर्म्मक । सकर्म्मक उन को कहते हैं कि जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हों और जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता ही के लिये हों वे अकर्म्मक कहाते हैं । सकर्म्मकभावयुक्त धातुओं के उदाहरण (आसयति देवदत्तं, शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम् । इत्यादि) यहां देवदत्त संज्ञककर्म्म ही में बैठना सोना और स्थित होनारूप भाव है । कर्मस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण

(गामवरुणद्धि, करोति कटं, पचत्योदनम् । इत्यादि) यहां गौ, चटाई और ओदनरूप कर्म ही में रोकना बनना और पकनारूप क्रिया हैं इस से इस प्रकार के धातु सकर्म्मक कहाते हैं। अकर्म्मकों में कर्तृस्थभावक धातुओं के उदाहरण (देवदत्तश्चिन्तयति,मन्त्रयते, अस्ति, भवति, तिष्ठति,आस्ते,चेत्यादि) यहां चिन्तन विचारना होना ठहरना और बैठना आदि भाव कर्त्ता ही में हैं। कर्तृस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण (गच्छति, धावति, हसति, क्रुध्यति, शाम्यति, इत्यादि) यहां चलना दौड़ना हंसना क्रोध और शान्ति आदि क्रिया कर्त्ता ही में रहती हैं इसलिये इस प्रकार के धातु अकर्म्मक कहाते हैं * । क्रिया का लक्षण (का पुनः क्रिया । ईहा । का पुनरीहा । चेष्टा । का पुनश्चेष्टा । व्यापारः । सर्वथा भवाञ्छब्दैरेव शब्दान् व्याचष्टे न किंचिदर्थजातं निदर्शयत्येवं जातीयका क्रियेति । क्रिया नामेयमत्यन्ताऽपरिदृष्टा, अशक्या पिण्डीभूता निदर्शयितुम् । यथा गर्भो निर्लुठितः । साऽसावनुमानगम्या कोऽसावनुमानः । इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु यदा पचतीत्येतद्भवति सा नूनं क्रिया । अथवा यया देवदत्त इह भूत्वा पाटलिपुत्रे भवति सा नूनं क्रिया) महाभाष्य अ० १ । पा० ३ । सू० १ आ० १ ॥ क्रिया उस को कहते हैं कि जो कुछ आत्मा मन प्राण इन्द्रिय और शरीर में चेष्टा होती है जैसे कोई मनुष्य चलते हुए हाथ को देख कर अनुमान करता है कि जिस से यह हाथ चलता है वही क्रिया है। जो अनुमान से जानने योग्य है वह आंख आदि इन्द्रियों से ग्रहण करने में कैसे आ सकती है किन्तु विज्ञान ही से दिखलाई देती है । धातु और प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन । जिन धातुओं के उदात्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए और ओ, ये अनुबन्ध इत्संज्ञक होते हैं उन से परस्मैपद और जिन के पूर्वोक्त ही अनुदात्त अकारादि स्वर इत्संज्ञक हों उन और व्यञ्जनों में ङकार जिन का इत्संज्ञक होता है उन से भी आत्मनेपद होता है । जिस का स्वरित अकारादि तथा ञकार इत्संज्ञक हो उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं । जिन का आकार इत् जाता है उन और जिन का ईकार इत् जाता है

* सकर्म्मक और अकर्म्मक धातुओं की व्यवस्था कई प्रकार से समझी जाती है । मुख्य तो यही है कि जिस प्रकरण में प्रयुक्त क्रिया हो उस का अर्थ किसी कर्म्म के साथ सम्बन्धित होवे तो सकर्म्मक, नहीं तो अकर्म्मक । और जो धातु सकर्म्मक हैं वे ही कभी देश काल और वस्तु के भेद से अकर्म्मक और अकर्म्मक सकर्म्मक भी हो जाते हैं । और जितने धातु अकर्म्मक हैं वे सब किसी पदार्थ के आश्रय से सकर्म्मक होजाते हैं जैसे—अध्वानमास्ते । यह आस धातु अकर्म्मक है इस का मार्ग ही कर्म्म हो जाता है । इस प्रकरण को कारकीय ग्रन्थ के कर्म्मकारक प्रकरण में भी लिख चुके हैं । अर्थात् जिस २ को कर्म्म संज्ञा वहां करदी है उस २ अर्थ का जिस २ धातु के साथ सम्बन्ध हो उस २ को सकर्म्मक, अन्य सब अकर्म्मक मानने चाहियें ॥

उन से परे निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व इ-कार इत् जाता है उन को नुम् का आगम होता है। जिनका उकार इत् जाता है उन से परे क्त्वा प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता। जिनका ऊकार इत् जाता है उन से परे सामान्य आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व ऋकार इत् जाता है चङ्परकणिच् परे हो तो उन के उपधा को ह्रस्व नहीं होता। जिनका लृकार इत् जाता हैं उन से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है। जिनका एकार इत् जाता है उन को इडादि सिच् के परे परस्मैपद में वृद्धि नहीं होती है। जिन का ओकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। जिन का ञि इत् जाता है उन से परे वर्त्त-मान काल में क्त प्रत्यय होता है। जिन का टु इत् जाता है उन से परे अथुच् प्रत्यय होता है। जिन का डु इत् जाता है उन से क्त्रि प्रत्यय होता है और जिन का ष इत् जाता है उन से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है, इत्यादि प्रयो-जन जानो। अब संक्षेप से प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन कहते हैं। जिन का ककार और ङकार इत् जाता है वे प्रत्यय परे हों तो अङ्ग को गुण और वृद्धि नहीं होती। वचि स्वपि आदि धातुओं को संप्रसारण और अन्तोदात्त स्वर भी होता है, और कित् ङित् के परे ग्रह आदि धातुओं को संप्रसारण भी होता है, और ञित् णित् प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग तथा उपधाभूत अकार को वृद्धि होती और प्र-कृति को आद्युदात्त स्वर भी होता है। चित् का अन्तोदात्तस्वर प्रयोजन है, टित् का प्रयोजन ङीप् प्रत्यय। डित् का प्रयोजन टिलोप। तित् का प्रयोजन स्वरित स्वर होता है। आगमों के प्रयोजन। टित् कित् और मित् ये तीन प्रकार के आगम होते हैं। इन के नियम ये हैं कि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय में टित् आगम जिस को विधान करें उस के आदि का अवयव, कित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त का अवयव और मित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त अच् से परे होता है। (प्र०) आदि और अन्त का क्या लक्षण है (उ०) (यस्मात् पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिरित्युच्यते। यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्त इत्युच्यते) महाभाष्य अ० १ पा० १ । सू० २१ । जिस के पूर्व कुछ न हो और पर हो वह आदि कहाता है और जिस के पूर्व कुछ है और पर नहीं है उसको

अन्त कहते हैं (प्र०) कौन २ धातु सेट् और कौन २ अनिट् होते हैं (उ०) (अथ के पुनरनुदात्ताः । आदन्ता अदरिद्राः । इवर्णान्ताश्चाश्रि श्वि डी शी दीधी वेवीङः । उकारान्ताः–यु रु णु क्षु क्ष्णूर्णुवर्जम् । ऋदन्ताश्चाजागृ वृङ् वृञः । शकिः कवर्गान्तानाम् । पचि वचि सिचि मुचि रिचि विचि प्रच्छि यजि भजि भञ्जि रञ्जि सृजि त्यजि भुजि भ्रस्जि मस्जि रुजि युजि णिजि विजि सञ्जि स्वञ्जयश्चवर्गान्तानाम् । अदि रुदि शदि हदि छिदि तुदि नुदि खिदि भिदि स्कन्दि क्षुदि स्विद्यति पद्यति विन्ति विद्यति राधि युधि बुधि शुधि क्रुधि रुधि साधि व्यधि बन्धि सिध्यति हनि मन्यतयस्तवर्गान्तानाम् । तपि तिपि वपि शपि छुपि लुपि लिपि स्वप्यापि क्षिपि सृपि तृपि दृपि यभि रभि लभि यमि रमि नमि गमयः पवर्गान्तानाम् । रुशि रिशि दिशि विशि लिशि स्पृशि दृशि कुशि मृशि दंशि पुष्यति त्विषि कृषि श्लिषि विषि पिषि शिषि शुषि तुषि दुषि द्विषि घसि वसि दहि दिहि वहि दुहि नहि रुहि लिहि मिहयश्चोष्मान्तानाम् । वसिः प्रसारणी) महा० अ० ७ । पा० २ । सू० १० । आकारान्तों में एक दरिद्रा धातु को छोड़ के शेष सब अनिट् हैं, इवर्णान्तों में श्रि श्वि डी शी दीधी वेवी इन छः धातुओं को छोड़ के शेष अनिट्, उवर्णान्तों में यु रु णु क्षु क्ष्णु ऊर्णु इन छः धातुओं को छोड़ के शेष अनिट्, ऋवर्णान्तों में जागृ वृङ् वृञ् धातुओं को छोड़ के बाकी अनिट्, कवर्गान्तों में एक शकि धातु अनिट् बाकी सब सेट्, चवर्गान्तों में यथाक्रम से पठित पचि आदि बाईस २२ धातु अनिट् बाकी सब सेट्, तवर्गान्तों में यथापठित अदि आदि २७ सत्ताईस धातु अनिट् अन्य सब सेट् । पवर्गान्तों में तिपि आदि यथापठित २० बीस धातु अनिट् अन्य सब सेट् और ऊष्मान्त अर्थात् श ष स और ह जिन के अन्त में हों उन में रुशि आदि ३१ इकत्तीस धातु अनिट् अन्य सब सेट् हैं । इन में वस धातु वह समझना चाहिये कि जिस को सम्प्रसारण होता है अर्थात् आच्छादनार्थवाची का ग्रहण नहीं समझना । पूर्वोक्त सेट् अनिट् धातुओं की व्यवस्था महाभाष्यकार ने इस प्रकार लिखी है परन्तु उस में सब धातुओं का इक्प्रत्ययान्त निर्देश किया है इस से कौन धातु कौन गण का सेट् अनिट् व्यवस्था में समझना चाहिये इस बात का बोध ठीक २ नहीं होता सो इस के विशेष व्याख्यान गणस्थ धातुओं में देखने से विदित होगा और इस विषय में किन्हीं प्राचीन शिष्ट वैयाकरणों की बनाई कारिका भी हैं सो आगे लिखते हैं ॥

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः। अदन्तमृदन्तमृताञ्च वृङ्वृञौ श्विडी-ङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि ॥ १ ॥

गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ क्षुवन्तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः। इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥२॥

धातु दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरान्त, दूसरे व्यंजनान्त, उनमें स्वरान्त एकाच् धातु सब अनिट् होते हैं परन्तु अकारान्त, दीर्घ ऋकारान्त, ह्रस्व ऋकारान्तों में वृङ् वृञ् इवर्णान्तों श्वि, डीङ्, शीङ् और श्रिञ्, गणों में पढ़े ऊकारन्त सब तथा उवर्णान्तों में रु, स्नु, क्षु, ऊर्णु, यु, णु और क्ष्णु, इन सब को छोड़ के अर्थात् ये अकारान्त आदि जो गिनाये हैं सब सेट् हैं। इस के आगे हलन्तः— *

शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी। रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ॥३॥

ककारान्तों में एक शक, सकारान्तों में घस और निवासार्थ वाला वस, तथा भकारान्तों में रभ, लभ और मैथुन अर्थ में यभ, ये तीन धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझने चाहियें।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः। नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥४॥

मकारान्तों में यम, रम, नम, गम ये चार और नकारान्तों में हन तथा दिवादि गण में पढ़ा मन, ये दो धातु अनिट् हैं।

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन् निजिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन्। त्यजिं यजिं युजिरुजिसञ्जिमज्जतीन् भुजिं स्वजिं सृजिविजी विद्धयनिट् स्वरान् ॥ ५ ॥

---

* स्वरान्तों में महाभाष्यकारने अनेकाच् की अपेक्षा छोड़ के आकारान्तों में दरिद्रा और इवर्णान्तों में दीधीङ्, वेवीङ् धातु गिनाये हैं और कारिकाबनानेवालों का अभिप्राय यह है कि (एकाच उपदेशेऽनु०) सूत्र में जो एकाच् ग्रहण है उस का आश्रय लेकर ये धातु सेट् और ये अनिट् हैं अर्थात् दोनों प्रकार का व्याख्यान ठीक है इस महाभाष्य और कारिकाओं में परस्पर कुछ विरोध नहीं आसकता।

चकारान्तों में पच, वच, रिच, सिच, मुचि ये छः। छकारान्तों में एक प्रच्छ, जकारान्तों में रंज, निज, भज, भञ्ज, भ्रस्ज, त्यज, यज, युज, रुज, सञ्ज, मस्ज, भुज, स्वञ्ज, सृज, विज ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझना चाहिये।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन् शदिं सदिं स्विद्यति-पद्यती खिदिम्। तुदिं नुदिं विद्यति विन्त इत्यपि प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः॥ ६॥

दकारान्तों में अद, हद, स्कन्द, भिद, छिद, क्षुद, शद, सद, स्विद, पद, विद ये तीनों दिवादि गण के तथा विद, रुधादि गण का भी खिद, तुद, नुद, ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं।

रुधिस्सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः। इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मतास्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे॥ ७॥

धकारान्तों में रुध, राध, युध, बन्ध, साध, क्रुध, क्षुध, दिवादि गणका शुध, बुध, तथा सिध और व्यध, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं।

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम्। स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्तान्पठितांस्त्रयोदश॥ ८॥

पकारान्तों में तप, तिप, आप, वप, स्वप, लिप, लुप, दिवादि गण के तृप, दृप, ये दो। सृप, शप, छुप, क्षिप ये तेरह धातु अनिट् हैं।

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्। लिशिं च शान्ताननिटः पुराणगाः पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान्॥ ९॥

शकारान्तों में दिश, दृश, दंश, मृश, स्पृश, रिश, रुश, क्रुश, विश, लिश ये दश धातु अनिट् हैं।

शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं विषिं श्लिषिं तुष्यति-

दुष्यती ह्विषिम् । इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा ॥ १० ॥

षकारान्तों में शिष, पिष, त्विष, विष, श्लिष, द्विष, दिवादि गण के शुष, पुष, तुष, दुष ये चार और तुदादि और भ्वादि दोनों गण का कृष, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं।

दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः। इमेऽनिटोऽष्टावि हमुक्तसंशया गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्त्तिताः ॥ ११ ॥

हकारान्तों में दिह, दुह, मिह, रुह, वह, नह, दह, लिह ये आठ धातु अनिट् हैं। जहां सेट् गिनाये हैं वहां बाकी अनिट् और जहां अनिट् गिनाये हैं वहां बाकी सेट् समझ लेना चाहिये। इस ग्रन्थ में जितने सेट् अनिट् धातु हैं उन सब की व्यवस्था मुख्य तो यही समझनी चाहिये और उदात्तोपदेश से सेट् और अनुदात्तोपदेश से अनिट् समझते हैं। जो धातु उपदेश में उदात्त हैं उन पर कोई चिन्ह नहीं होता और जो उपदेश में अनुदात्त होते हैं उन के आदि वर्ण के नीचे अनुदात्त की तिर्छी रेखा कर देते थे और परस्मैपद आत्मनेपद के लिये यह संकेत था कि जिन का अन्त्य वर्ण अनुदात्त चिन्हित इत् हो और जो उपदेश में ङित् हों उन से आत्मनेपद, शेषों से परस्मैपद और जिन के अन्त्य वर्ण स्वरित्संज्ञक इत् हों उन तथा जो उपदेश में ञित् हों उन से उभयपद समझते थे। इस से बहुत लाघव के साथ सब बोध हो जाता था, अब विद्या की प्रवृत्ति कम हो जाने के कारण यह परम्परा बिगड़ गई है। अब इस ग्रन्थ में अनुदात्त से अनिट् अनुदात्तेत् से आत्मनेपद और उदात्त से सेट् उदात्तेत् से परस्मैपद समझते हैं फिर भी आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द भी सर्वत्र अत्यन्त सुगम होने के लिये लिख दिये हैं कि जिस से किसी को भ्रम न पड़ सके। इन सब प्रकारों से इत्संज्ञक वर्णों और सेट् अनिट् की व्यवस्था को ठीक २ जान के पढ़ने पढ़ाने वाले सब लोग शुद्ध प्रयोगों से व्यवहार और अर्थज्ञान से उपयुक्त हों। जो धातु उपदेश में उदात्त (सेट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुक प्रत्ययों को इडागम होजाता और जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुकसंज्ञक

प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है। इस ग्रन्थ में ग्यारह लकार अर्थात् लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् क्रम से लिखे हैं, अन्य ग्रन्थों में लेट् लकार केवल वैदिक प्रयोगविषयक है सो नहीं लिखा है, यहां विस्तारपूर्वक इस के प्रयोग लिखेंगे, लिङ् दो वार इसलिये लिखा है कि इस के दो प्रकार के अर्थों में दो प्रकार के प्रयोग होते हैं। और दशगण अर्थात् भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि क्रम से लिखे हैं, इस के पीछे बारह प्रक्रियाँ अर्थात् णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु, कण्ड्वादि, प्रत्ययमाला, आत्मनेपद, परस्मैपद, भावकर्म्म, कर्म्मकर्त्ता और लकारार्थ, ये भी क्रम से विस्तारपूर्वक लिखे जावेंगे, और इतना ही तिङन्त का विषय है इसीको आख्यात भी कहते हैं, और जो सूत्र सामान्य करके सब धातुओं में लगते हैं उनको प्रथम २ एक ही वार लिखेंगे और जो किन्हीं विशेष धातुओं में लगते हैं उनको एक वार लिख कर पीछे जहां उन का सम्बन्ध होगा वहां २ इस ग्रन्थ की सूत्र संख्या जो उन के आगे लिखी होगी व्याख्या में रख दिया करेंगे उस के अनुसार उन सूत्रों का सम्बन्ध सब लोग वहां २ देख लेवें॥

इति भूमिका॥

ओ३म्

अथ–आख्यातिकः ॥

[भू] सत्तायाम् (होना) उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः । यह धातु परस्मैपदी है। भू शब्द सत्ता(होने) अर्थ का वाचक है, इस अर्थ को कहने के योग्य होने से भू शब्द समर्थ है जो इस से किसी अर्थ का बोध न होता तो असमर्थ समझा जाता फिर असमर्थ से कोई कार्य्य भी नहीं हो सकता इस विषय की परिभाषा (समर्थः पदविधिः) सन्धिविषय में लिख चुके हैं और शब्द का लक्षण भी नामिक की भूमिका में लिखा है,भू शब्द सत्ता अर्थ के साथ समर्थ हुआ तो इस की धातुसंज्ञा होकर कृत् प्रत्ययों की उत्पत्ति आदि कार्य्य होते हैं ॥

१–भूवादयो धातवः ॥ अ० ॥ १। ३ । १ ॥

यह सूत्र प्रातिपदिक संज्ञा का अपवाद है क्योंकि सामान्य अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा कही है उस में यह धातु संज्ञा विशेष है,भू शब्द से लेके जो दशगणों में शब्द पढ़े हैं उन सब की धातु संज्ञा होती है इस से भू शब्द की धातु संज्ञा होकर ॥१॥

२–धातोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९१ ॥

सब धातुसंज्ञक शब्दों से तव्यत् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ २ ॥

३–कृदतिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९३ ॥

धातु से विहित जो प्रत्यय हैं वे कृत्संज्ञक हों, यहां तिङन्त की अपेक्षा में ॥३॥

४—वर्त्तमाने लट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२३ ॥

आरम्भ से लेके जब तक क्रिया की समाप्ति न हो तब तक वर्त्तमान काल समझना चाहिये, उस वर्त्तमान अर्थ के वाचक धातुओं से लट् प्रत्यय हो, अब ये कृत्संज्ञक लट् आदि प्रत्यय भाव,कर्म्म और कर्त्ता, इनतीन अर्थों में सामान्य करके होते हैं, उन का विभाग ॥ ४ ॥

५–लः कर्म्मणि च भावे चाऽकर्म्मकेभ्यः ॥ अ० ॥ ३। ४।६९॥

सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में तथा अकर्म्मक धातुओं से भाव

और कर्त्ता अर्थ में लकार होते हैं, यहां भू धातु से कर्त्ता अर्थ में लट् आया, भू–लट् । इस अवस्था में ॥ ५ ॥

६—हलन्त्यम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के समुदाय का जो अन्त्य वर्ण है वह इत्संज्ञक होवे ॥६॥

७—तस्य लोपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९ ॥

इत्संज्ञा वाले वर्ण का लोप हो जाता है, यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर प्रत्यय के आदि लकार की भी इत्संज्ञा (लशक्वतद्धिते) सूत्र से प्राप्त है सो अगले सूत्र में लकार के स्थान में आदेशविधानरूप ज्ञापक से नहीं होती ॥ ७ ॥

८—लस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७७ ॥

लकार के स्थान में वक्ष्यमाण आदेश हों ॥ ८ ॥

९—तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७८ ॥

तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्, ये अठारह १८ आदेश लकार के स्थान में होते हैं ॥ ९ ॥

१०—लः परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । ९९ ॥

लकार के स्थान में जो अठारह १८ आदेश हैं वे परस्मैपदसंज्ञक हों, इस से सामान्य करके विधान है परन्तु इस के अपवाद (तङानाः०) सूत्र से तङ् आदि नव ९ की आत्मनेपद संज्ञा की है इस से तिप् पर्य्यन्त नव ९ की ही परस्मैपद संज्ञा जानो, अब भू धातु से परस्मैपद हों वा आत्मनेपद इस सन्देह की निवृत्ति के लिये ॥१०॥

११—शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७८ ॥

जिन धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय कहे हैं उन को छोड़ के शेष धातुओं से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हों, यहां भू से तिप् आदि नव प्रत्यय प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

१२—तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०१ ॥

तिङ्संबन्धी जो तिप् आदि प्रत्यय हैं वे यथाक्रम से तीन२ प्रथम मध्यम और उत्तम-

संज्ञक हों अर्थात् (तिप्, तस्, झि, प्रथम) (सिप्, थस्, थ, मध्यम) और (मिप् वस्, मस्, उत्तम) जानो ॥ १२ ॥

१३–तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०२ ॥

वे ही तिङ्सम्बन्धी तिप् आदि के तीन २ समुदाय पृत्येक एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक हों अर्थात् तिप् एकवचन, तस् द्विवचन और झि बहुवचन, इसी प्रकार सिप् आदि में जानो ॥ १३ ॥

१४–युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०५ ॥

तिङन्तक्रिया का अर्थ जिस युष्मद्पदवाच्य में रहे तो उस युष्मद् शब्द उपपद के रहत सन्ते युष्मद् शब्द का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से मध्यम पुरुष हो ॥ १४ ॥

१५–अस्मद्युत्तमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०७ ॥

तिङन्त के साथ एकाधिकरण अस्मत् शब्द उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥

१६–शेषे प्रथमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०८ ॥

युष्मद् और अस्मद् से भिन्न तिङन्त के साथ एकाधिकरण नाम उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से प्रथम पुरुष हो, यहां शेष कर्त्ता की विवक्षा में लकार के स्थान में जो तिबादि आदेश हैं उन में से प्रथम पुरुष का एकवचन तिप् आया (भू–तिप्) इस अवस्था में ॥ १६ ॥

१७–यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । १३ ॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से जिस प्रत्यय का विधान हो वही प्रत्यय परे हो तो तदादि शब्दरूप अर्थात् जिस से परे जो पृत्यय करें उसी पृत्यय के परे पूर्व जो शब्दरूप है सो अंगसंज्ञक हो और उस पृत्यय का आदि अर्थात् पृकृति और पृत्यय के बीच में जो विकरण पृत्यय है उस की भी अंगसंज्ञा हो जावे ॥ १७ ॥

१८–तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११३ ॥

धातु के अधिकारमात्र में कहे जो तिङ् और शित् प्रत्यय वे सार्वधातुकसंज्ञक हों,

इस से तिप् आदि की सार्वधातुक संज्ञा हुई ॥ १८ ॥

१९—कर्त्तरि शप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो, इस से भू और तिप् के बीच में शप् प्रत्यय होकर (भू-शप्—तिप्) इस अवस्था में दोनों हल् पकारों की (६) से इत्संज्ञा और (७) से लोप होकर (भू-श—ति) रहा ॥ १९ ॥

२०—लशक्वतद्धिते ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८ ॥

प्रत्यय के आदि जो लकार, शकार और कवर्ग उन की इत्संज्ञा होवे, इस से (श्) की इत् संज्ञा होकर (७) से लोप हो गया (भू—अ—ति) इस अवस्था में ॥ २० ॥

२१—सार्वधातुकाऽर्द्धधातुकयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८४ ॥

गुण वृद्धि आदि संज्ञा और इक् ही के स्थान में नियम होना संधिविषय में लिख चुके हैं, सार्वधातुक और आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे हों तो इगन्त अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो, इस से उकार का अन्तरतम ओकार गुण होकर (भो-अ-ति) इस अवस्था में ॥ २१ ॥

२२—एचोऽयवायावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् प्रत्याहार के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, ये चार आदेश यथासंख्य करके हों, ओकार को अव् होकर । भवति । द्विवचन की विवक्षा में (भव-तस्) तिङ् प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नामिक में हो चुकी है, इस का फल ॥ २२ ॥

२३— न विभक्तौ तुस्माः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४ ॥

यहां तस् के सकार की इत् संज्ञा प्राप्त है उस का निषेध करते हैं, विभक्ति में जो तवर्ग, सकार और मकार वे इत्संज्ञक न हों, तिङन्त की पदसंज्ञा भी कर चुके हैं नामिक में ॥ २३ ॥

२४—ससजुषो रुः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६६ ॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द के अन्त वर्ण को रुँ आदेश हो ॥ २४ ॥

२५—उपदेशोऽजनुनासिक इत् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २ ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् है उस की इत्संज्ञा हो। इस से उकार की इत्संज्ञा होकर (भव—तर्) ॥ २५ ॥

२६—खरवसानयोर्विसर्ज्जनीयः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १५ ॥

खर् प्रत्याहार के परे तथा अवसान में वर्त्तमान जो रेफ उसके स्थान में विसर्ज्जनीय आदेश हो, इस से रेफ को विसर्ग होकर। भवतः। भव—झि। यहां ॥ २६ ॥

२७—झोऽन्तः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३ ॥

प्रत्यय के आदि अवयव झकार को अन्त आदेश होवे, तकार में अकार उच्चारणार्थ है किन्तु आदेश हलन्त ही होता है। भव—अन्त—इ। दोनों अकारों को पररूप एकादेश हो कर। भवन्ति। भव+सिप्=भवसि। भव+थस्=भवथः। भव+थ=भवथ। भव+मिप् ॥ २७ ॥

२८—अतो दीर्घो यञि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०१ ॥

यञादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होवे, यहां शप् के अकार की अङ्ग संज्ञा होकर दीर्घ होता है। भवामि। भव+वस्=भवावः। भव+मस्=भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः। इन लकारों का क्रम वर्ण-क्रम से चलाया करते हैं जैसे—अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ये छः टित् और ऐसा ही क्रम ङित् लकारों में भी जानो। इस क्रम के अनुसार लट् के आगे लिट् प्राप्त हुआ, जितने सूत्र प्रथम लकार में लिख दिये उन को अब नहीं लिखेंगे, जो २ विशेष आते जावेंगे उन को लिखेंगे ॥ २८ ॥

२९—परोक्षे लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११५ ॥

यहां भूत और अनद्यतन की अनुवृत्ति आती है, परोक्ष अनद्यतन भूतकाल में हुए कार्यों के वाचक धातुओं से लिट् लकार होवे, परोक्ष शब्द का अर्थ ॥ २९ ॥

का०—परोभावः परस्याक्षे परोक्षे लिटि दृश्यताम्।
उत्वं वाऽऽदेः परादक्ष्णः सिद्धं वाऽस्मान्निपातनात् ॥

जिस से विषयों के साथ ज्ञान की व्याप्ति हो उसको अक्षि कहते हैं अर्थात् पांच

ज्ञान इन्द्रियों का ग्रहण अक्षि शब्द से समझना चाहिये, और इन्द्रियों से जो परे हो उस को परोक्ष कहते हैं, अक्ष शब्द के परे पर शब्द को परो आदेश अथवा अकार को उकार वा परोक्ष शब्द को पृषोदरादि मान के इस सूत्र में निपातन किया है ॥

भा०–कथं जातीयकं पुनः परोक्षं नाम । केचित्तावदाहुर्वर्षशत-वृत्तं परोक्षमिति । अपर आहुर्वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति । अपर आहुः कुड्यकटान्तरितं परोक्षमिति । अपर आहुर्द्व्यहवृत्तं त्र्यहवृत्तं वेति ॥

जो अपने सामने न हुआ हो उस परोक्ष की कितनी अवधि समझनी चाहिये, इस विषय में बहुत ऋषि लोगों का भिन्न २ विचार है, कोई कहते हैं कि जो सौ १०० वर्ष पहले हो चुका हो, कोई कहते हैं कि जो हज़ार १००० वर्ष प्रथम हो गया हो, कोई कहते हैं कि जो भित्ति और चटाई के आड़ में हो और कोई कहते हैं कि दो वा तीन दिन पहले हुआ हो उस को परोक्ष समझना चाहिये, सो यह सब प्रकार से परोक्ष हो सक्ता है क्योंकि मुख्य परोक्ष के साथ सब का सम्बन्ध हो सक्ता है, भू–लिट् । यहां टकार इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर लकार के स्थान में तिप् आदि नव होजाते हैं ॥

३०–लिट् च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११५ ॥

यह सूत्र सार्वधातुक संज्ञा का अपवाद है, लिट् के स्थान में जो तिप् आदि आदेश हैं वे आर्द्धधातुकसंज्ञक हों । यहां एक संज्ञा का अधिकार तो है ही नहीं इस कारण पक्ष में सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त है इसलिये एव शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये कि आर्द्धधातुक संज्ञा ही हो अन्य नहीं ॥ ३० ॥

३१–परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८२ ॥

धातु से परे लिट् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक जो तिप् आदि आदेश उन को णल् आदि नव आदेश यथासंख्य करके हो जावें । भू–णल् ॥ ३१ ॥

३२–चुटू ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७ ॥

प्रत्यय के आदि जो चवर्ग, टवर्ग उन की इत्संज्ञा हो । यहां णकार लकार की

इत्संज्ञा और लोप होके । भू-अ । इस अवस्था में द्विर्वचन, यणादेश, गुण, वृद्धि आदि कार्य्य भी प्राप्त हैं इन सब का बाधक वुक् होता है ॥ ३२ ॥

३३–भुवो वुग्लुङ्लिटोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८८ ॥

अजादि लुङ् और लिट् लकार परे हों तो भू अङ्ग को वुक् का आगम होता है । उक्मात्र की इत्संज्ञा होकर । भूव्-अ ॥ ३३ ॥

३४–एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है, धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३४ ॥

३५–अजादेर्द्वितीयस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २ ॥

यहां भी एकाच् की अनुवृत्ति आती है । अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३५ ॥

३६–लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । ८ ॥

लिट् लकार परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन होवे, इस में विशेष यह है कि जहां धातुओं में अनेक अच् होते हैं वहां प्रथम एकाच् और द्वितीय एकाच् अवयव का कहना बन सकता है और जिन में एक ही अच् है वहां उसी एकाच् अवयव को द्वित्व हो जाता है। यहां भी एकाच् अवयव भूव् मात्र को द्विर्वचन हो कर भूव्–भूव्–अ । यहां ॥ ३६॥

३७–पूर्वोऽभ्यासः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४ ॥

द्विर्वचन का जो पूर्व भाग है वह अभ्याससंज्ञक हो । प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा हो कर ॥ ३७ ॥

३८–हलादिः शेषः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे अन्य हलों का लोप हो जावे । इस से प्रथम भूव् के (व्) का लोप होके । भू—भूव् –अ ॥ ३८ ॥

३९–ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यास के अच् को ह्रस्व आदेश हो, ह्रस्व उकार हुआ ॥ ३९ ॥

४०—भवतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७३ ॥

लिट् लकार परे हो तो भू धातु के अभ्यास को अकार आदेश हो। ह्रस्व उकार को प्रमाणकृत आन्तर्य्य मान के ह्रस्व अकार हो कर। भ—भूव्—अ ॥ ४० ॥

४१—अभ्यासे चर्च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यास में जो झल् उन को चर् और जश् आदेश हों। यहां भकार को बकार हो जाता है ॥ ४१ ॥

४२—असिद्धवदत्राभात् ॥ अ ० ॥ ६ । ४ । २२ ॥

इस सूत्र से ले कर इस पाद की समाप्ति पर्य्यन्त एक प्रयोग में दो कार्य्य प्राप्त हों तो पर कार्य को असिद्ध मान के पूर्व विहित कार्य भी हो जावे, इस से वुक् के आगम को असिद्ध मान के उवङ् आदेश प्राप्त होता है इसलिये ॥ ४२ ॥

४३—वा०—वुग्युटावुवङ्यणोः कर्तव्ये सिद्धौ वक्तव्यौ ॥

उवङ् और यणादेश करने में वुक् और युट् का आगम यथासंख्य करके असिद्ध न माने जावें किन्तु सिद्ध ही समझने चाहियें,इससे उवङ् नहीं होता। बभूव। बभूव्—अतुस्। यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥ ४३ ॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥ अ० ॥ १ । २ । ६ ॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक हो। तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं,पित्विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५—क्ङिति च ॥ अ० ॥ १ । १ । ५ ॥

कित्, गित् और ङित् प्रत्यय परे हों तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों। इस से गुण का निषेध होकर। बभूव्+अतुस् =बभूवतुः। बभूव् + उस्=बभूवुः। बभूव्—थल् ॥ ४५ ॥

४६—आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३५ ॥

अङ्ग से परे जो वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम हो। थल् आदि में

इट् होकर । बभूविथ । बभूव्+अथुस्=बभूवथुः । बभूव्+अ=बभूव । बभूव्+णल्=बभूव । बभू-व्+इट्+व=बभूविव । बभूव्+इट्+म=बभूविम । इसके पश्चात् क्रम से प्राप्त लुट् ॥४६॥

४७–अनद्यतने लुट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५ ॥

जिस समय से विचार करने लगें तब से अर्द्धरात्रिपर्य्यन्त अद्यतन और अर्द्ध-रात्रि के पश्चात् हुए कार्य्य को अनद्यतन कहते हैं, सो भूत, भविष्यत् दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है, भविष्यत् अनद्यतन अर्थ के वाचक धातु से लुट् लकार होवे । भू-लुट् ॥ ४७ ॥

४८–स्यतासी ऌलुटोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३३ ॥

यहां किसी अनुबन्धविशेष की सूचना नहीं की इस से (ऌ) कर के लट् और लृङ् दोनों का बोध होता है, और यह सूत्र शप् आदि विकरण प्रत्ययों का अपवाद है, लुट् लकार परे हो तो धातु से स्य और तासि प्रत्यय यथासंख्य करके हों, यहां लुट् के परे तासि हुआ । भू–तासि–लुट् ॥ ४८ ॥

४९–आर्द्धधातुकं शेषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११४ ॥

धात्वाधिकार में कहे तिङ् और शित् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय वे आर्द्धधातुक-संज्ञक होते हैं । इस से तासि प्रत्यय की आर्द्धधातुक संज्ञा और लट् के स्थान में तिवा-दि आदेश होकर । भू+तासि–तिप् । यहां तासि में अनुनासिक इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर ॥ ४९ ॥

५०–लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८५ ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष को डा, रौ और रस् आदेश यथासंख्य करके हों । तिप् के स्थान में डा आदेश होकर ड्कार की इत् संज्ञा होने से तास् प्रत्यय के आस् मात्र का लोप होकर । भू–इत्–आ । यहां ॥ ५० ॥

५१–पुगन्तलघूपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो पुगन्त और लघु वर्ण जिस की उपधा में हो उस को गुण हो । इस से इट् के आगम को लघूपध मान के गुण प्राप्त हुआ इसलिये ॥ ५१ ॥

५२—दीधीवेवीटाम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ६ ॥

दीधी और वेवी धातु तथा इट् का आगम इन को गुण वृद्धि न हों । फिर आर्द्धधातुक तास् के परे भू को गुण और अवादेश होकर । भविता ॥ ५२ ॥

५३—रि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५१ ॥

रेफादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे । भवितास्+रौ = भवितारौ । भवितास्+रस्=भवितारः ॥ ५३ ॥

५४—तासस्त्योर्लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५० ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे जैसे । भवितास्+सिप्=भवितासि । भवितास्+थस्=भवितास्थः । भवितास्+थ = भवितास्थ । भवितास्+मिप्=भवितास्मि । भवितास्+वस् भवितास्वः । भवितास्+मस्=भवितास्मः ॥ ५४ ॥

५५—लृट् शेषे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३ ॥

क्रियार्थ क्रिया उपपद हो वा न हो तो भी भविष्यत् अर्थ के वाचक धातु से लृट् लकार होवे । भू—लृट् । यहां (५०) से स्य प्रत्यय, गुण, तिबादि आदेश, स्य प्रत्यय को इट् का आगम और अवादेश होकर ॥ ५५ ॥

५६—आदेशप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५९ ॥

इण् और कवर्ग से परे जो आदेश और प्रत्यय का अवयव सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो जावे । जैसे । भवि+स्य+तिप्=भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ॥ ५६ ॥

५७—लिङर्थे लेट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७ ॥

यहां छन्द की अनुवृत्ति आती है । जो विधि आदि और हेतु हेतुमान् लिङ् लकार के अर्थ हैं उन में धातुमात्र से वैदिकप्रयोगविषयक लेट् लकार होवे, यहां भू धातु से लेट्, तिबादि आदेश हो कर । भू—तिप् । इस अवस्था में शप् विकरण प्राप्त है ॥ ५७ ॥

५८—सिब् बहुलं लेटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३४ ॥

धातु से सिप् प्रत्यय हो लेट् लकार परे हो तो बहुल करके । विकल्प का

पर्य्यायवाची बहुल ग्रहण समझना चाहिये । इसी से पक्ष में शप् भी होता है । सिप् में से इप् मात्र की इत् संज्ञा हो जाती है ॥ ५८ ॥

५९—वा०—सिब् बहुलं णिद्वक्तव्यः ॥

सिप् प्रत्यय बहुल (विकल्प) से णित् समझना चाहिये । सिप् को आर्द्धधातुक मान के इडागम हो जाता है ॥ ५९ ॥

६०—अचो ञ्णिति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११५ ॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ञित्,णित् प्रत्यय परे हों तो । ऊकार को औ वृद्धि होकर । भ्—औ—इ—स्—ति । यहां ॥ ६० ॥

६१—लेटोऽडाटौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९४ ॥

लेट् लकार को अट् और आट् का आगम पर्य्याय से हों सो पित् हों अर्थात् अपित् प्रत्यय से पृथक् पित्त्व धर्म आगम में समझा जावे । टकार की इत् संज्ञा होकर भावि+स+अ+तिप्=भाविषति । भाविष्+आट्+ति=भाविषाति ॥ ६१ ॥

६२—इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९७ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी परस्मैपदविषयक इकार का लोप विकल्प करके हो । अवसान में झलों के स्थान में चर् आदेश विकल्प करके होते हैं । भाविषत् । भाविषात् । भाविषद् । भाविषाद् । जिस पक्ष में णित् संज्ञा के न होने से वृद्धि नहीं होती वहां । भविषति । भविषाति । भविषत् । भविषात् । भविषद् । भविषाद् । और सिप् प्रत्यय के विकल्प से जिस पक्ष में शप् होता है वहां । भवति । भवाति । भवत् । भवात् । भवद् । भवाद् । (तस्) अन्य सब कार्य्य पूर्व के समान । भाविषतः । भाविषातः । भविषतः । भविषातः । भवतः । भवातः । (झि) भाविषन्ति । भाविषान्ति । इकार-लोप होने के पश्चात् संयोगान्त तकार का लोप होकर । भाविषन् । भाविषान् । भविषन्ति । भविषान्ति । भविषन् । भविषान् । भवन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् (सिप्) भाविषसि । भाविषासि । यहां इकारलोप के पश्चात् सकार को विसर्जनीय हो जाते हैं । भाविषः । भाविषाः । भविषसि । भविषासि । भविषः । भविषाः । भवसि । भवासि । भवः । भवाः । (थस्) भाविषथः । भाविषाथः । भविषथः । भविषाथः । भवथः । भवाथः । (मिप्) यहां अट् पक्ष में भी एकादेश को पूर्व का अन्त अवयव मानने से अदन्त

अङ्ग को दीर्घ होकर एक ही प्रकार के प्रयोग होते हैं। भाविषामि२। भाविषाम् २। भविषामि २। भविषाम्२। भवामि२। भवाम्२। (वस्) (मस्) ॥ ६२ ॥

६३-स उत्तमस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९८ ॥

लेट् लकारसम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प करके लोप होवे। भाविषाव२। भाविषावः२। भविषाव२। भविषावः२। भवाव२। भवावः २। भाविषाम२। भाविषामः २। भविषाम२। भविषामः२। भवाम२। भवामः २ ॥ ६३ ॥

६४-लोट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६२ ॥

विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो। और ॥ ६४ ॥

६५-आशिषि लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७३ ॥

आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् और लोट् लकार हों। भव-ति। इस अवस्था में ॥६५॥

६६-एरुः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८६ ॥

लोट् लकार के इकार को उकार आदेश हो जावे। भवतु ॥ ६६ ॥

६७-तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७।१।३५ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो तु और हि उन को तातङ् आदेश विकल्प करके होवे। यहां तात् आदेश के कहने और तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (एरुः) सूत्र के आगे पढ़ने से लोट् के अन्त्य इकार को उ आदेश विकल्प करके हो ही जाता फिर इतने गौरव और अन्यत्र पढ़ने से ज्ञापक होता है कि तातङ् आदेश में ङित्करण अन्त्य अल् के स्थान में होने के लिये नहीं किन्तु गुण वृद्धि के निषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य्य होने के लिये है, अङ्मात्र की इत्संज्ञा होकर। भवतात् ॥ ६७ ॥

६८-लोटो लङ्वत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८५ ॥

लोट् लकार को लङ्वत् कार्य्य हो। लङ्वत् शब्द में वतिप्रत्यय षष्ठी औ सप्तमी दोनों विभक्तियों के स्थान में हो सकता है, सो यहां षष्ठ्यर्थ में वति समझना चाहिये सप्तम्यर्थ में नहीं क्योंकि लङ् के परे जो अट् का आगम आदि कार्य्य होते हैं वे लोट् के परे न हों ॥ ६८ ॥

६९–तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५॥

ङित् लकार के जो तस् , थस्, थ और मिप् उनको ताम्, तम्, त और अम् आदेश यथासंख्य करके हों । जैसे । भवताम् । भव–झि (६६) से उ होकर भवन्तु । भव–सिप् ॥ ६९ ॥

७०–सेर्ह्यपिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

लोट् लकार का जो सि उस को अपित् हि आदेश होवे । पित्त्वधर्म का अतिदेश आदेश में प्राप्त है इसलिये अपित् कहा है (६७) से तातङ् होकर भवतात् । पक्ष में ॥ ७० ॥

७१–अतो हेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०५ ॥

अदन्त अङ्गसे परे जो हि उस का लुक् हो जावे । भव । भव+थस् = भवतम्। भव+थ = भवत ॥ ७१ ॥

७२–मेर्निः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८९ ॥

लोट् लकार का जो मि उस को नि आदेश हो । यहां इकार उच्चारणरूप ज्ञापक से ही उकारादेश नहीं होता है । भव+मिप् = भवानि ॥ ७२ ॥

७३–नित्यं ङितः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९९ ॥

ङित् लकार के उत्तम पुरुष का जो सकार उस का नित्य ही लोप होवे । भवाव । भवाम ॥ ७३ ॥

७४–अनद्यतने लङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतन भूत अर्थ के वाचक धातु से लङ् लकार होवे ॥ ७४ ॥

७५–लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७१ ॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों तो धातु को उदात्त अट् का आगम हो । भू के आदि में होता है ॥ ७५ ॥

७६–इतश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०० ॥

ङित् लकार का जो परस्मैपदविषयक इकार उस का लोप होवे । अभवत् ।

अभव+तस् = अभवताम् (६९) से ताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभव+मिप् = अभवम् (९६) से अम् और पररूप एकादेश होता है । अभवाव । अभवाम ॥ ७६ ॥

७७–विधिनिमन्त्रणाऽऽमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्
॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६१ ॥

विधि (प्रेरणा) निमंत्रण (किसी से प्रतिज्ञाकरना) आमंत्रण (यथेष्ट आचरण) अधीष्ट (सत्कारपूर्वक ठहराना) सम्प्रश्न (सम्यक् पूछना) प्रार्थना (मांगना) इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होवे । भव–तिप् ॥ ७७ ॥

७८–यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०३॥

यह सूत्र सीयुट् का अपवाद है । परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को यासुट् का आगम हो सो उदात्त और ङित्संज्ञक हो जावे । इस आगम को उदात्तविधान करने से ज्ञापक होता है कि अन्य आगम जिन में स्वर विशेष का विधान न किया हो वे सब अनुदात्त होते हैं । और लकार के स्थान में जो तिप् आदि आदेश होते हैं वे ङित् नहीं होते क्योंकि उन के ङित् होने से उन को हुआ आगम भी ङित् हो ही जाता फिर ङित् कहने से यही ज्ञापक होता है कि यहां स्थानिवद्भाव नहीं होता ॥७८॥

७९–सुट् तिथोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०७ ॥

लिङ् लकार के जो तकार, थकार उन को सुट् का आगम हो । सुट् का आगम यासुट् का बाधक इसलिये नहीं होता कि लिङ् को यासुट् और तकार थकार को सुट् कहने से विषयभेद हो जाता है और एक विषय में उत्सर्गापवाद की प्रवृत्ति होती है ॥७९॥

८०—लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुकविषयक अनन्त्य सकार का लोप हो जावे । इस से यासुट् और सुट् दोनों के सकारों का लोप हो जाता है और आशिष् लिङ् में परस्मैपद और आत्मनेपद में आर्द्धधातुकविषय के होने से ये सकार बने रहते हैं । भव–या–तिप् ॥ ८० ॥

८१–अतो येयः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८० ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो सार्वधातुक का अवयव या उस को इय् आदेश होवे ।

(लोपो व्योर्वलि) सूत्र से हल् यकार का लोप होकर । भव+ इ+तिप् = भवेत् । भव+इ+तस् = भवेताम् ॥ ८१ ॥

८२—झेर्जुस् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०८ ॥

लिङ् लकार का जो झि उस को जुस् आदेश होवे । जकार की इत्संज्ञा ॥ ८२॥

८३—उस्यपदान्तात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्त अवर्ण से उस् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो जावे । इस की प्राप्ति तो है परन्तु परत्व और नित्यत्व से इय् आदेश हो जाता है फिर प्राप्ति नहीं रहती, इस सूत्र का काम अदादि गण में पड़ेगा कि जहां इय् आदेश की प्राप्ति नहीं होती । भव+इय्+उस्=भवेयुः । भव+इय्+सिप्=भवेः । भव+इय्+थस्= भवेतम् । भव+इय्+थ=भवेत । भव+इय्+मिप्=भवेयम् । भव+इय्+वस्=भवेव । भव+इय्+मस् = भवेम । आशीर्वाद अर्थ में (६५) सूत्र से लिङ् आया ॥ ८३ ॥

८४—लिङाशिषि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उस के स्थान में जो तिबादि आदेश वे आर्द्धधातुकसंज्ञक हों ॥ ८४ ॥

८५—किदाशिषि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०४ ॥

परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को जो यासुट् का आगम ङित् कहा है वह आशीर्वाद अर्थ में कित् समझना चाहिये । आर्द्धधातुक संज्ञा होने से शप् विकरण प्राप्त नहीं अन्य किसी का विधान नहीं है, यहां पदान्त में संयोग के आदि यासुट् के सकार का लोप हो जाता है । भू+यास्+तिप्=भूयात् । भू+यास्+तस् = भूयास्ताम् । भू+यास्+झि = भूयासुः । भू+यास्+सिप् = भूयाः । भू+यास्+थस् = भूयास्तम् । भू+यास्+थ = भूयास्त । भू+यास्+मिप् = भूयासम् । भू+यास्+वस् = भूयास्व । भू+यास्+मस् = भूयास्म ॥ ८५ ॥

८६— लुङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११० ॥

सामान्य भूत अर्थ के वाचक धातुओं से लुङ् लकार हो । शप् विकरण की प्राप्ति में ॥ ८६ ॥

८७–च्लि लुङि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४३ ॥

लुङ् लकार परे हो तो धातु से च्लि प्रत्यय होवे ॥ ८७ ॥

८८–च्लेः सिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४४ ॥

लुङ् लकार परे हो तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो जावे । इकार चकार की इत्संज्ञा हो जाती है ॥ ८८ ॥

८९–गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७७ ॥

गाति, स्था, घुसंज्ञक, पा, भू इन धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् हो जावे । सिच् का लुक् होने पश्चात् उस को स्थानिवद्भाव मान के उस से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक तिप् को इट् का आगम प्राप्त है इसलिये ॥ ८९ ॥

९० – वा० – आहिभुवोरीट्प्रतिषेधः * ॥

आह आदेश और भू से परे जो सिच् का लुक् उस को स्थानिवद्भाव न हो । स्थानिवत् के निषेध से ईट् का आगम नहीं होता । अब भू अंग को तिप् के परे गुण पाता है इसलिये ॥ ९० ॥

९१–भूसुवोस्तिङि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८८ ॥

अव्यवहित सार्वधातुक तिङ् परे हो तो भू और सू अङ्गों को गुण न होवे । (७७) सूत्र से अडागम हो कर । अट्+भू+सिच्+तिप् = अभूत् । अभू+तस् = अभूताम् । अभू+वुक्+झि = अभूवन् । अभू+सिप् = अभूः । अभू+थस् = अभूतम् । अभू+थ = अभूत । अभू+वुक्+मिप् = अभूवम् । अभू+वस् = अभूव । अभू+मस् = अभूम ॥ ९१ ॥

९२–न माङ्योगे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७४ ॥

माङ् अव्यय शब्द के योग में लुङ्, लङ् और लृङ् लकारों को जो अट् और

* इस वार्त्तिक को सिद्धान्तकौमुदीवालों ने न समझ के (अस्तिसिचोऽपृक्ते) इस सूत्र का व्याख्यान मूल, महाभाष्य और काशिका आदि से विपरीत किया है जो कदाचित् उन का व्याख्यान ठीक होवे तो वार्त्तिक व्यर्थ हो जावे और असम्भव अभिप्राय सूत्र से निकाला है इसलिये मान्य नहीं हो सकता क्योंकि ऋषियों के अभिप्राय से विरुद्ध इन के पाण्डित्य को कौन मान सकता है ॥

आट् के आगम कहे हैं वे न हों। जैसे। इह मा भूत्। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्। इत्यादि में अट् का आगम नहीं होता और आट् के आगम का निषेध आगे अजादि धातुओं में दिखाया जावेगा ॥ ९२ ॥

९३—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियाऽतिपत्तौ ॥ अ० ॥ ३। ३। १३९ ॥

जो हेतु, हेतुमद्भाव आदि लिङ् लकार के निमित्त अर्थ हैं उन में क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो धातु से लृङ् लकार हो जावे। (७७) से अट् और स्य प्रत्यय आदि कार्य्य होकर। अट्+भू+इट्+स्य+तिप् = अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्य+मिप् = अभविष्यम्। यहां अम् के अकार के साथ पररूप हो जाता है। अभविष्याव। अभविष्याम ॥९३॥

अथ तवर्गीयान्ताश्चतुस्सप्ततिः [एध] वृद्धौ (बढ़ना) अब यहां से आगे एध आदि तवर्गीयान्त ७४ चौहत्तर धातुओं का व्याख्यान है। भू धातु में जितने सामान्यविषयक सूत्र लिखे हैं वे यहां नहीं लिखे जावेंगे। पूर्ववत् वर्त्तमान अर्थ में लट् आया ॥

९४—तङानावात्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १। ४। १०० ॥

लकार के स्थान में तङ् और आन (शानच् आदि) आत्मनेपदसंज्ञक आदेश हों। इस से त से लेकर महिङ् तक नव ९ का ग्रहण है ॥ ९४ ॥

९५—अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १। ३। १२ ॥

अनुदात्त वर्ण जिन का इत् गया हो और ङित् धातुओं से त आदि नव ९ आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों। यहां भी एध में अनुदात्त अकार इत् जाता है इस कारण इस से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय आये, शप् विकरण होकर ॥ ९५ ॥

९६—टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ अ० ॥ ३। ४। ७९ ॥

टित् लकारों के स्थान में जो आत्मनेपदसंज्ञक आदेश उन के टिभाग को ए आदेश हो जावे। यहां समुदाय को आदेशविधान नहीं इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता। एध्+शप्+त = एधते ॥ ९६ ॥

९७—सार्वधातुकमपित् ॥ अ० ॥ १। २। ४ ॥

सार्वधातुकसंज्ञक अपित् प्रत्ययों की ङित् संज्ञा हो ॥ ९७ ॥

९८—आतो ङितः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८१ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो ङित् प्रत्ययों का आकार उस को इय् आदेश हो जावे। आम् भाग को एकार होकर। एध्+शप्+आताम् = एधेते। एध्+शप्+झ = एधन्ते ॥ ९८ ॥

९९—थासः से ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८० ॥

टित् लकार के थास् को से आदेश होवे। एध्+शप्+थास् = एधसे। एध्+शप्+आथाम् = एधेथे। एध्+शप्+ध्वम् = एधध्वे। एध्+शप्+इट् = एधे। यहां गुण एकार के परे पररूप एकादेश हो जाता है। एध्+शप्+वहि = एधावहे। एध्+शप्+महिङ् = एधामहे ॥ ९९ ॥

१००—इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३६ ॥

लिट् लकार परे हो तो इजादि और गुरुमान् धातुओं से आम् प्रत्यय हो जावे परन्तु ऋच्छ धातु से न होवे ॥ १०० ॥

१०१—आमः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८१ ॥

आम् से परे जो लि उस का लुक् हो जावे। इस से लिट् का लुक् होकर ॥१०१॥

१०२—कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४० ॥

इस सूत्र में लिट् ग्रहण किया है इसी से यहां लुक् हुए लिट् का रूपातिदेश समझना चाहिये। आमन्त से लिट् लकार परे हो तो कृञ्, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग अर्थात् इन सामान्य धातुओं का आम्प्रत्ययान्त एध आदि विशेष धातुओं से परे एक प्रयोग में समावेश किया जावे। आत्मनेपद प्रकरण में अनुप्रयोग शब्द के साथ कृञ् धातु का ग्रहण किया है इसी ज्ञापक से (कृभ्वस्तियोगे०) इस सूत्र से ले के (कृञो०) इस सूत्र में कृञ् के ञकारपर्य्यन्त प्रत्याहार ग्रहण से तीनों धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है, और ये कृञ् आदि तीनों धातु सामान्यार्थवाचक और आम्-प्रत्ययान्त विशेषार्थवाचक हैं इस कारण एक अर्थ के साथ दोनों धातुओं का सम्बन्ध हो जाता है। यह कृञ् धातु ञित् है ॥ १०२ ॥

१०३—स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥ अ० ॥ १।३।७२॥

यह सूत्र परस्मैपद का बाधक है। क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होवे तो स्व

रित और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो अन्यत्र परस्मैपद । इस से क्रिया का फल अन्य के लिये होने में भी कृञ् धातु से परस्मैपद प्राप्त है इसलिये ॥ १०३ ॥

१०४–आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६३ ॥

जिस धातु से आम्प्रत्यय किया हो उस से जो आत्मनेपद होता हो तो अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद और आम्प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी हो तो परस्मैपद हो जावे । यहां एध धातु आत्मनेपदी है इसलिये कृञ् से भी आत्मनेपद प्रत्यय ही होते हैं ॥ १०४ ॥

१०५–लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८१ ॥

लिट् लकार के स्थान में जो त और झ हैं उनको एश् और इरेच् आदेश यथासंख्य करके हो जावें । त सम्पूर्ण के स्थान में शित् आदेश होकर । एध–आम्–कृ–ए । इस अवस्था में एकार की कित्संज्ञा होने से गुण, वृद्धि तो प्राप्त नहीं परन्तु द्विर्वचन का बाधक परत्व से यणादेश हो जाता है उस को स्थानिरूपवत् मान के पुनः द्विर्वचन होता है । एध–आम्–कृ कृ–ए ॥ १०५ ॥

१०६–उरत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यास के ऋकार को अत् आदेश होवे । ऋ के स्थान में रपर होने नियम से अर् होकर रेफ का लोप (३८) से हो जाता है ॥ १०६ ॥

१०७–कुहोश्चुः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यास के जो कवर्ग और हकार उन को चवर्ग आदेश होता है । एध्+आम्+चकृ+ए = एधाञ्चक्रे । एध्+आम्+चकृ+आताम् = एधाञ्चक्राते । एधाञ्चकृ+इरेच् = एधाञ्चक्रिरे ॥ १०७ ॥

१०८–एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १० ॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु हो उस से परे वलादि आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम न हो । इस से थास् के स्थान में से के परे इडागम न हुआ । एधाञ्चकृ+थास् = एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ॥ १०८ ॥

१०९–इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७८ ॥

इणन्त अङ्ग से परे जो षीध्वम्, लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश

हो। धकार का अन्तरतम ढकार हो जाता है। एधाञ्चकृ+ध्वम् = एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चकृ +इट् = एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। भू का अनुप्रयोग पूर्व के समान, कि जैसा साधन केवल भू का लिट् में लिख आये हैं। एधाम्बभूव। एधाम्बभूवतुः। एधाम्बभूवुः। एधाम्बभूविथ। एधाम्बभूवथुः। एधाम्बभूव। एधाम्बभूविव। एधाम्बभूविम ॥ १०९ ॥

११०—अत आदेः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश होवे। अस् धातु के अभ्यास के अकार को पररूप एकादेश प्राप्त है इसलिये दीर्घादेश कहा है। एध्+आम्+अ अस्+णल् = एधामास। एधामासतुः। एधामासुः। एधामासिथ। एधामासथुः। एधामास। एधामास। एधामासिव। एधामासिम। यहां अस् धातु को आर्द्धधातुकविषय में भू आदेश अस् धातु के अनुप्रयोगवचनसामर्थ्य से ही नहीं होता। इस के आगे लुट् प्रथम पुरुष त, आताम्, झ के स्थान में डा आदि आदेश हो के एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे ॥ ११० ॥

१११—धि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । २५ ॥

धकारादि प्रत्यय परे हो तो सकार का लोप हो जावे। यहां ध्वम् प्रत्यय के परे तास् के सकार का लोप हो जाता है। एधितास्+ध्वम् = एधिताध्वे ॥ १११ ॥

११२—ह एति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५२ ॥

एकार परे हो तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश होवे। एधितास् +इट् = एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। इस के आगे (लृट्) स्य आदि सब कार्य्य होकर। एध्+ इट् + स्य+त = एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे। अब इस के आगे क्रम से (लेट्) प्रथम शप् का अपवाद सिप् विकरण ॥ ११२ ॥

११३—वैतोऽन्यत्र ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९६ ॥

अकार को जहां ऐकार कहा है उस विषय को छोड़ के लेट् लकार सम्बन्धी जो एकार उस को ऐकार आदेश विकल्प करके हो जावे। टिभाग को जो एकारादेश कह चुके हैं उसी एकार को यहां ऐकार समझना चाहिये। एध्+ इट् +सिप्+अट्+ त=एधिषतै। एध् + इट्+ सिप्+ आट्+ त=एधिषातै। एधिषते। एधिषाते। शप् पक्ष में। एधतै। एधातै। एधते। एधाते ॥ ११३ ॥

११४–आत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९५ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी आकार को ऐकार आदेश नित्य ही हो जावे । इस से(आताम्,आथाम्) के आकार को ऐकार होता है। उस ऐकार के परे अट् आट् को वृद्धि एकादेश हो जाने से रूपभेद नहीं होता । एध् +इट् +सिप्+अट्+आताम् । एधिषैते २ । एधैते २ । (झ) एधिषन्तै । एधिषान्तै । एधिषन्ते । एधिषान्ते । एधन्तै । एधान्तै । एधन्ते। एधान्ते। (थास्) एधिषसै। एधिषासै । एधिषसे । एधिषासे । एधसै। एधासै । एधसे । एधासे । (आथाम्) एधिषैथे २ । एधैथे २ । (ध्वम्) एधिषध्वै। एधिषाध्वै । एधिषध्वे । एधिषाध्वे । एधध्वै । एधाध्वै । एधध्वे । एधाध्वे । (इट्) एधिषै । एधिषे । एधै । एधे । यहां जिस पक्ष में इट् प्रत्यय के एकार को ऐकार आदेश होता है वहां अट् और आट् के आगम को वृद्धि एकादेश हो जाने से प्रयोग भिन्न नहीं होते । (वहि) एधिषावहै । एधिषावहै । एधावहै । एधावहे । (महिङ्) एधिषामहै । एधिषामहे । एधामहै । एधामहे । यहां भी जब अट् होता है तब यञादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दीर्घ हो जाने से एक ही प्रकार के प्रयोग हो जाते हैं । (लेट्)॥११४॥

११५–आमेतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९० ॥

लोट् लकार का जो एकार उस को आम् आदेश हो जावे । टिभाग को जो एकार कहा है उसी को यहां आम् आदेश समझना चाहिये । एध्+शप्+त = एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥ ११५ ॥

११६–सवाभ्यां वामौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९१ ॥

सकार, वकार से परे जो लोट् लकार का एकार उस को व और अम् आदेश यथासंख्य करके हों । एध्+शप्+थास् = एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ॥ ११६ ॥

११७–एत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९३ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष का जो एकार उस को ऐ आदेश होवे । यह आम् आदेश का बाधक है ॥ ११७ ॥

११८–आडुत्तमस्य पिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९२ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो वह पित् हो जावे । अपित् सार्वधातुक को पित् आगम होने से गुण आदि कार्य्य और सम्प्रसारण का निषेध

हो जाता है। परन्तु यहां भ्वादिगण में इस का कुछ काम नहीं पड़ता क्योंकि यहां तो शप् प्रत्यय को मान के सब काम होते हैं किन्तु अदादि, जुहोत्यादि में काम पड़ेगा, और भू धातु में भी इस आट् के आगम का सम्बन्ध होता है। यहां सर्वत्र शप् के अकार के साथ दीर्घ एकादेश हो जाता है। एध्+शप्+आट्+ऐ = एधै। एधावहै। एधामहै। इस के आगे (लङ्) पूर्व के समान अन्य सब कार्य्य जानो॥ ११८॥

११९–आडजादीनाम्॥ अ०॥ ६। ४। ७२॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों तो अजादि धातुओं को आट् का आगम हो जावे। अट् का अपवाद आट् का आगम है। वृद्धि एकादेश होकर। आट्+एध्+अ+त = ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि। आगे (लिङ्)॥ ११९॥

१२०–लिङः सीयुट्॥ अ०॥ ३। ४। १०२॥

लिङ् लकार को सीयुट् का आगम हो। सीयुट् और सुट् दोनों सकारों का लोप (८०) से हो कर। एध्+अ+इय्+त = एधेत। एधेयाताम्॥ १२०॥

१२१–झस्य रन्॥ अ०॥ ३। ४। १०५॥

लिङ् लकार का जो झकार उस को रन् आदेश हो जावे। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्॥ १२१॥

१२२–इटोऽत्॥ अ०॥ ३। ४। १०६॥

लिङ् लकार के स्थान में जो इट् आदेश उस को अत् आदेश हो जावे। तपरकरण दीर्घ की निवृत्ति के लिये है। एधेय। एधेवहि। एधेमहि। आशिष् लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा होने से सकार का लोप नहीं होता। सीयुट् और सुट् दोनों सकारों को मूर्द्धन्यादेश (५६) से हो जाता है। एध्+इट्+सीयुट्+सुट्+त = एधिषीष्ट। यहां मूर्द्धन्य षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग हो जाता है और आताम् में तकार को कहा सुट् का आगम आकार से परे होता है। एध्+सीयुट्+आसुट्+ताम्=एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। यहां रेफादि रन् आदेश के परे सीयुट् के यकार का लोप हो जाता है। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। इस के

आगे (लुङ्) इस में कुछ विशेष नहीं है । आट्+ एध्+सिच्+त = ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ॥ १२२ ॥

१२३–आत्मनेपदेष्वनतः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५ ॥

यह सूत्र अन्त आदेश का बाधक है । अकारभिन्न से परे आत्मनेपदविषयक प्रत्यय के आदि झकार को अत् आदेश होवे । ऐध्+इट्स्+झ = ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ध्वम् के धकार को (१०९) सूत्र से मूर्द्धन्य नहीं होता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग नहीं है* । ऐध्+इट्स्+ध्वम् = ऐधिध्वम् । यहां (१११) से सकार का लोप हो जाता है । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । (लृङ्) इस में कुछ विशेष नहीं । आट्+एध्+इट्+स्य+त = ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि ॥ [†स्पर्द्ध] सङ्घर्षे (घिसना) और (ईर्ष्या) इस के प्रयोग एध के समान जानने । जैसे । स्पर्द्धते । स्पर्द्धेते । इत्यादि परन्तु लिट् के रूप विशेष हैं ॥ १२३ ॥

१२४–शर्पूर्वाः खयः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्याससम्बन्धी शर् जिन के पूर्व हैं वे खय् बाकी रहें अन्य हलों का लोप हो जावे । स्पर्द्ध+स्पर्द्ध+ (१०५) से एश = पस्पर्द्धे । पस्पर्द्धाते । पस्पर्द्धिरे । पस्पर्द्धिषे । पस्पर्द्धाथे । पस्पर्द्धिध्वे । पस्पर्द्धे । पस्पर्द्धिवहे । पस्पर्द्धिमहे । स्पर्द्धिता । स्पर्द्धिष्यते । स्पर्द्धिषतै । स्पर्द्धिषातै । स्पर्द्धिषते । स्पर्द्धिषाते । इत्यादि । स्पर्द्धताम् । अस्पर्द्धत ।

* सिद्धान्त कौमुदी में जो (ऐधिढ्वम्) प्रयोग लिखा है सो किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग कैसे समझा जावे (इणः षीध्वं०) सूत्र में अङ्गग्रहण का यही प्रयोजन है कि (एधिषीध्वं०) यहां मूर्द्धन्यादेश न हो जावे और लुङ् लकार में कदाचित् सिच् को अङ्गसंज्ञा होने से इट् को भी अङ्ग संज्ञा हो जावे सो भी सिच्लोप को असिद्ध वा स्थानिवत् मानें तो असिद्धि की प्राप्ति ही नहीं क्योंकि लोपविधायक सूत्र से मूर्द्धन्यविधायक सूत्र त्रिपादी में भी परे है । स्थानिवत् में सिच् स्थानी है उस को कोई कार्य्य करना नहीं और सिच् को स्थानिवत् मानने से सान्त अङ्ग होगा इणन्त नहीं फिर (ऐधिढ्वम्) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है ।

† एक यह नियम इस ग्रन्थ में पढ़ने पढ़ाने वालों को ध्यान में रखना चाहिये कि भू के तुल्य परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग और एध के समान आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग समझें । यहां से आगे सब धातुओं के ग्यारहों लकारों के एक २ प्रयोग लकारों के क्रमानुसार लिखेंगे और जहां विशेष सूत्र लग के विशेष प्रयोग बनेंगे वहां सब रूप लिख दिया करेंगे और असिद्ध प्रयोग चिह्नित अवयवों के सहित रक्खे जाते हैं वे आगे विशेष २ धातुओं के प्रयोगों ही में रक्खेंगे और जो एक अर्थ में एक प्रकार के बहुत धातु होंगे उनमें से एक के प्रयोग लिख दिया करेंगे उसी के समान दूसरों के समझने होंगे ॥

स्पर्द्धेत । स्पर्द्धिषीष्ट । अस्पर्द्धिष्ट । अस्पर्द्धिष्यत । [गाधृ] प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (सत्कार, प्राप्त होने की इच्छा, गांठना) गाधते । अभ्यास के अच् को ह्रस्व और गकार को जकार होकर । जगाध्+ए=जगाधे । जगाधाते । जगाधिरे । गाधिता । गाधिष्यते । गाधिषतै । गाधिषातै । गाधताम् । अगाधत । गाधेत । गाधिषीष्ट । अगाधिष्ट । अगाधिष्यत ॥ [बाधृ]विलोड़ने (हटा देना) बाधते । बबाधे । बाधिता । बाधिष्यते । बाधिषतै । बाधिषातै । बाधिषते । बाधिषाते । इत्यादि । बाधताम् । अबाधत । बाधेत । बाधिषीष्ट । अबाधिष्ट । अबाधिष्यत ॥ [नाथृ, नाधृ] याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु । याच्ञा (मांगना) उपताप (पीड़ा) ऐश्वर्य (उत्तम पदार्थ) आशीः (इच्छा) आशीर्वाद अर्थ ही में नाथ धातु से आत्मनेपद और अर्थों में परस्मैपद होता है। जैसे । सर्पिषो नाथते । अन्यत्र । नाथति । नाथतः । नाथन्ति । इत्यादि शेष रूप बाध के समान होते हैं ॥ [दधृ] धारणे (धारण करना) दधते । दधेते । दधन्ते । इत्यादि ॥ १२४ ॥

१२५–अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ॥ अ० ॥ ६ । ४।१२० ॥

जिस लिट् को मान के धातु के अभ्यास को आदेश नहीं हुआ हो उस के परे धातु के अभ्यास का लोप हो और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकार आदेश हो जावे कित् लिट् परे हो तो । जैसे । द+दध्+ए= देधे। देधाते । देधिरे । देधिषे । देधाथे । देधिध्वे । देधे । देधिवहे । देधिमहे । दधिता । दधिष्यते । (लेट्) में विशेष ॥१२५ ॥

१२६–अत उपधायाः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११६ ॥

अंग के उपधा अकार को ञित्, णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जावे । इस से णित् पक्ष में वृद्धि होती है । दाधिषतै । दाधिषातै । दाधिषते । दाधिषाते । दधिषतै । दधिषातै । दधिषते । दधिषाते । दधतै । दधातै । दधते । दधाते । दाधिषैते२ । दधिषैते २ । दधैते २ । इत्यादि । दधताम् । अदधत । दधेत । दधिषीष्ट । अदधिष्ट । अदधिष्यत ॥ [स्कुदि] आप्रवणे (कूदना) ॥ १२६ ॥

१२७–इदितो नुम् धातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५८ ॥

जिस धातु का इ इत् गया हो उस को नुम् का आगम हो । (नुम्) मित् का आगम अन्त्य अच् से परे हुआ । स्कु नुम्+द्+शप्+त = स्कुन्दते । स्कुन्देते। स्कुन्दन्ते ।

लिट् में । चुस्कुन्दे । चुस्कुन्दाते । चुस्कुन्दिरे । स्कुन्दिता । स्कुन्दिष्यते । स्कुन्दिषतै । स्कुन्दिषातै । स्कुन्दताम् । अस्कुन्दत । स्कुन्देत । स्कुन्दिषीष्ट । अस्कुन्दिष्ट । अस्कुन्दिष्यत ॥ [श्विदि] श्वैत्ये (श्वेत होना) श्विन्दते । शिश्विन्दे । श्विन्दिता । श्विन्दिष्यते । श्विन्दिषतै । श्विन्दिषातै । श्विन्दताम् । अश्विन्दत । श्विन्देत । श्विन्दिषीष्ट अश्विन्दिष्ट । अश्विन्दिष्यत ॥[वदि] अभिवादनस्तुत्योः (नमस्कार) और (प्रशंसा) वन्दते । ववन्दे । वन्दिता । वन्दिष्यते । वन्दिषतै । वन्दिषातै । वन्दताम् । अवन्दत । वन्देत । वन्दिषीष्ट । अवन्दिष्ट । अवन्दिष्यत ॥ [भदि] कल्याणे सुखे च (शुभ गुणों को प्राप्त होना) और (सुखी होना) भन्दते । बभन्दे । भन्दिता । भन्दिष्यते । भन्दिषतै । भन्दिषातै । भन्दताम् । अभन्दत । भन्देत । भन्दिषीष्ट । अभान्दिष्ट । अभान्दिष्यत ॥ [मदि] स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु । स्तुति (प्रशंसा करना) मोद (हर्ष होना) मद (अभिमान) स्वप्न (सोना) कान्ति (कामना करना) गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) मन्दते । ममन्दे । मन्दिता । मन्दिष्यते । मन्दिषतै । मन्दिषातै । मन्दिषते । मन्दिषाते । इत्यादि । मन्दताम् । अमन्दत । मन्देत । मन्दिषीष्ट । अमान्दिष्ट । अमान्दिष्यत ॥ [स्पदि] किञ्चिच्चलने (मन्द २ चलना) स्पन्दते । पस्पन्दे । स्पन्दिता । स्पन्दिष्यते । स्पन्दिषतै । स्पन्दिषातै । स्पन्दताम् । अस्पन्दत । स्पन्देत । स्पन्दिषीष्ट । अस्पान्दिष्ट । अस्पान्दिष्यत ॥ [क्लिदि] परिदेवने (दुःखी होना) क्लिन्दते । चिक्लिन्दे । क्लिन्दिता । क्लिन्दिष्यते । क्लिन्दिषतै । क्लिन्दिषातै । क्लिन्दताम् । अक्लिन्दत । क्लिन्देत । क्लिन्दिषीष्ट । अक्लिन्दिष्ट । अक्लिन्दिष्यत ॥ [मुद] हर्षे (आनन्द होना) मोदते । मुमुदे । मोदिता । मोदिष्यते । मोदिषतै । मोदिषातै । मोदताम् । अमोदत । मोदेत । मोदिषीष्ट । अमोदिष्ट । अमोदिष्यत ॥ [दद] दाने (देना) ददते ॥ १२७ ॥

१२८—न शसददवादिगुणानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२६ ॥

दद धातु को लिट् लकार में अकार को एकार और अभ्यास का लोप प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । शस, दद, वकारादि और गुण हुए अकार को एकार तथा उन के अभ्यास का लोप न होवे । दद्+दद्+ए=दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । दादिषतै । दादिषातै । दादिषते । दादिषाते । ददिषतै । ददिषातै । ददिषते । ददिषाते । इत्यादि । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । [ष्वद, स्वर्द] आस्वादने (स्वाद लेना) ॥ १२८ ॥

१२९—धात्वादेः षः सः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

धातु के आदि षकार को सकारादेश होवे । स्वदते । स्वर्दते । सस्वदे । सस्वर्दे । स्वादिता । स्वार्दिता । स्वदिष्यते । स्वर्दिष्यते । स्वादिषतै । स्वादिषातै । स्वर्दिषतै । स्वर्दिषातै । स्वदताम् । स्वर्दताम् । अस्वदत । अस्वर्दत । स्वदेत । स्वर्देत । स्वादिषीष्ट । स्वर्दिषीष्ट । अस्वदिष्ट । अस्वार्दिष्ट । अस्वादिष्यत । अस्वार्दिष्यत ॥ [उर्द] माने क्रीडायां च । (तोलना, खेलना) ॥ १२९ ॥

१३०—उपधायां च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७८ ॥

धातु के उपधाभूत हल् जिन से परे हों ऐसे रेफ और वकार की उपधा इक् को दीर्घ हो जावे । इस से उर्द धातु के उकार को सब लकारों में दीर्घ ऊकार हो जाता है । ऊर्दते । और यह धातु इजादि गुरुमान् भी है इस से एध के समान लिट् लकार में आम् प्रत्यय आदि सब कार्य्य हो जाते हैं । ऊर्दाञ्चक्रे । ऊर्दाञ्चक्राते । ऊर्दाञ्चक्रिरे । ऊर्दाम्बभूव । ऊर्दामास । ऊर्दिता । ऊर्दिष्यते । ऊर्दिषतै । ऊर्दिषातै । ऊर्दताम् । (११९) औरर्दत । ऊर्देत । ऊर्दिषीष्ट । और्दिष्ट । और्दिष्यत ॥ [कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद,] क्रीडायामेव (खेलने ही में) पूर्व के समान उपधा को दीर्घ होकर कूर्दते । खूर्दते । गूर्दते । चकूर्दे । चुखर्दे । जुगूर्दे । गोदते । जुगुदे । कूर्दिता । कूर्दिष्यते । कूर्दिषतै । कूर्दिषातै । कूर्दताम् । अकूर्दत । कूर्देत । कूर्दिषीष्ट । अकूर्दिष्ट । अकूर्दिष्यत । गोदिता गोदिष्यते । गोदिषतै । गोदिषातै । गोदताम् । अगोदत । गोदेत । गोदिषीष्ट । अगोदिष्ट । अगोदिष्यत ॥ [षूद] क्षरणे (झरना, वा नष्ट होना) (१२८) सूदते । सुषूदे । सूदिता । सूदिष्यते । सूदिषतै । सूदिषातै । सूदताम् । असूदत । सूदेत । सूदिषीष्ट । असूदिष्ट । असूदिष्यत । जो धातु उपदेश में मूर्द्धन्य षकारादि हैं उनकी व्यवस्था इस प्रकार समझना चाहिये कि:—

भा०—अजदन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः । स्मिङ्, स्वदि, स्विदि, स्वञ्ज, स्वपयश्च । सृपि, सृजि, स्तॄ, स्त्या, सेक, सृ, वर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

जिन धातुओं के सकार से अच् तथा दन्त्य अक्षर परे हो वे सब षोपदेश धातु समझने चाहियें । दन्त्य अक्षरों में दन्त्योष्ठ वकार का ग्रहण नहीं होता इसी से ष्वष्क

आदि धातु पृथक् पढ़े हैं और सृप् आदि धातु अजुदन्त्य पर हैं इन को षोपदेश नहीं समझना चाहिये ॥ [ह्राद] अव्यक्ते शब्दे (स्पष्ट उच्चारण का न होना) ह्रादते । जह्रादे । ह्रादिता । ह्रादिष्यते । ह्रादिषतै । ह्रादिषातै । ह्रादताम् । अह्रादत । ह्रादेत । ह्रादिषीष्ट । अह्रादिष्ट । अह्रादिष्यत ॥ [ह्लादी] सुखे च (सुख होना) यहां चकार से अव्यक्त शब्द की अनुवृत्ति आती है, और इसी प्रकार जिन जिन धातुओं के अर्थ के पश्चात् चकार पढ़ा हो वहां २ सर्वत्र पूर्व धातु के अर्थ का संबन्ध समझ लेना चाहिये । ह्लादते । जह्लादे । इत्यादि । [स्वाद] आस्वादने (चाखना) स्वादते । सस्वादे । [पर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दित शब्द करना) पर्दते । पपर्दे । पर्दिता । पार्दिष्यते । पर्दताम् । अपर्दत । पर्देत । पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट । अपार्दिष्यत ॥ [यती] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) यतते । येते । येताते । येतिरे । यतिता । यतिष्यते । यातिषतै । यातिषातै । यतताम् । अयतत । यतेत । यतिषीष्ट । अयातिष्ट । अयतिष्यत ॥ [युतृ, जुतृ] भासने (प्रकाश होना) योतते । युयुते । जोतते । जुजुते । योतिता । जोतिता । योतिष्यते । जोतिष्यते । इत्यादि ॥ [विथृ, वेथृ] याचने (मांगना) वेथते । विविथे । विवेथे । अभ्यास को ह्रस्व इकार हो जाता है । वेथिता । वेथिष्यते ॥ [श्रथि] शैथिल्ये (शिथिलता) इदित् को नुम् (१२७) से होकर । श्रन्थते । शश्रन्थे । श्रन्थिता । श्रन्थिष्यते ॥ [ग्रथि] कौटिल्ये (टेढ़ापन) ग्रन्थते । जग्रन्थे ॥ [कत्थ] श्लाघायाम् (प्रशंसा) कत्थते । चकत्थे । कत्थिता । कत्थिष्यते । कत्थिषतै । कत्थिषातै । कत्थताम् । अकत्थत । कत्थेत । कत्थिषीष्ट । अकत्थिष्ट । अकत्थिष्यत । इत्येधादय उदात्ता उदात्तेत आत्मनेपदिनः षट्त्रिंशत् ॥

अथाऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः । अब तवर्गान्तों में अड़तीस ३८ धातु परस्मैपदी हैं [अत] सातत्यगमने (निरन्तर चलना) परस्मैपद में तिप् आदि नव ९ प्रत्यय आये । अत्+शप्+तिप्=अतति । अततः । अतन्ति । अतसि । अतथः । अतथ । अतामि । अतावः । अतामः । लिट् में द्विर्वचन होने के पश्चात् अभ्यास को दीर्घ (११०) से और एकादेश होकर । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम । (लुट्) अतिता । अतितारौ । अतितारः । अतितासि । अतितास्थः । अतितास्थ । अतितास्मि । अतितास्वः । अतितास्मः । (लृट्) अतिष्यति । अतिष्यतः । अतिष्यन्ति । अतिष्यसि । अतिष्यथः । अतिष्यथ । अतिष्यामि । अतिष्यावः । अतिष्यामः । (लेट्) आतिषति । आतिषाति । अतिषति । अतिषाति ।

इत्यादि (लोट्) अततु । अततात् । अतताम् । अतन्तु । अत । अततात् । अततम् । अतत । अतानि । अताव । अताम । (लङ्) आट् (११९) और उस के साथ वृद्धि होकर । आतत् । आतताम् । आतन् । आतः । आततम् । आतत । आतम् । आताव । आताम । (लिङ्) अतेत् । अतेताम् । अतेयुः । अतेः । अतेतम् । अतेत । अतेयम् । अतेव । अतेम । (आशिष् लिङ्) संयोगादि यास् के सकार का (स्कोः संयोगा०) सूत्र से लोप । अत्यात् । अत्यास्ताम् । अत्यासुः । अत्याः । अत्यास्तम् । अत्यास्त । अत्यासम् । अत्यास्व । अत्यास्म (लुङ्) ॥ १३० ॥

१३१–अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९६ ॥

अस्ति धातु और सिच् प्रत्यय से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् का आगम हो । आत्=इट् स्=ईट्=त् । इस अवस्था में ॥ १३१ ॥

१३२–इट ईटि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २८ ॥

इट् से परे सकार का लोप हो ईट् परे हो तो । फिर त्रिपादी में हुए सिच् के लोप को असिद्ध मान के सन्धि प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ १३२ ॥

१३३–वा०—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥

दीर्घ एकादेश करने में सिच् के सकार का लोप सिद्ध समझना चाहिये । फिर दीर्घ एकादेश होकर । आतीत् । आतिष्टाम् ॥ १३३ ॥

१३४–सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०९ ॥

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद धातु से परे जो ङित् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे । यहां सिच् से परे झि को जुस् होता है । आट्+अत्+सिच्+जुस्=आतिषुः ॥ १३४ ॥

१३५–वदव्रजहलन्तस्याचः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३ ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो वद, व्रज और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि होवे । यहां अच् ग्रहण इक् की निवृत्ति के लिये है । वद, व्रज धातु भी हलन्त हैं इन का पृथक् ग्रहण इसलिये है कि लघु अकार जिन की उपधा में हो उन को विकल्प से वृद्धि कही है सो इन दोनों को नित्य ही होगी इस से अत धातु को वृद्धि प्राप्त हुई ॥ १३५ ॥

१३६—नेटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४ ॥

इडादि सिच् परे हो तो पूर्वोक्त हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि न होवे। अत् धातु को आट् के आगम पक्ष में तो वृद्धि होने न होने में कुछ भेद नहीं परन्तु जहां आट् का निषेध है वहां विशेष है जैसे । मा भवानतीत् ।'अतिष्टाम् । अतिषुः । आतीः। आतिष्टम् । आतिष्ट । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत् । आतिष्यताम् । आतिष्यन् । आतिष्यः । आतिष्यतम् । आतिष्यत । आतिष्यम् । आतिष्याव । आतिष्याम ॥ [चिती]संज्ञाने (ठीक२जानना) (५१) सूत्र से लघूपध चित् धातु को गुण होकर । चित्+शप्+तिप् = चेतति । चेततः । चेतन्ति । चिचेत ॥ १३६ ॥

१३७—असंयोगाल्लिट् कित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ५ ॥

असंयोगान्त धातुओं से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक होवे। तिप्, सिप्, मिप् के स्थान में जो आदेश हैं उन को छोड़ के अन्य अपित् समझने चाहिये,(४८) से गुण नहीं होता। चिचिततुः । चिचितुः । चिचेतिथ । चिचितथुः । चिचित । चिचेत। चिचितिव । चिचितिम । चेतिता । चेतिष्यति । चेतिषति। चेतिषाति । चेतति । चेताति । चेतत् । चेतात् । इत्यादि । चेततु । चेततात् । अचेतत् । चेतेत् (८५) (४५) चित्यात् । अचेतीत् । अचेतिष्यत् ॥ [च्युतिर्] आसेचने । (सींचना) (५१) से गुण । च्योतति । चुच्योत । चुच्युततुः । च्योतिता । च्योतिष्यति । च्योतिषति । च्योतिषाति । इत्यादि । च्योततु । च्योततात् । अच्योतत् । च्योतेत् । च्युत्यात् । च्युत्यास्ताम् । च्युत्यासुः । इत्यादि ॥ १३७ ॥

१३८—इरितो वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५७ ॥

जिस धातु का इर् भाग इत्संज्ञक हुआ हो उस धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे । अट्+च्युत्+अङ् +तिप्=अच्युतत् । अच्युतताम् । अच्युतन् । अच्युतः । अच्युततम् । अच्युतत । अच्युतम् । अच्युताव । अच्युताम । जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां । अच्योतीत् ।अच्योतिष्टाम् । अच्योतिषुः । इत्यादि ।अच्योतिष्यत् ॥ [श्च्युतिर्] क्षरणे (झरना, वा नाश होना) श्च्योतति । चुश्च्योत । इत्यादि च्युत् के समान जानो ॥ [मन्थ] विलोडने (विलोना) मन्थति । मन्थतः । मन्थन्ति । ममन्थ । मन्थिता । मन्थिष्यति । मन्थिषति। मन्थिषाति। मन्थति । मन्थाति । मन्थतु । अमन्थत् । मन्थेत् ॥ १३८ ॥

१३९—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २४ ॥

कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जिस का ह्रस्व इकार इत् न गया हो ऐसा जो हलन्त अङ्ग उस की उपधा के नकार का लोप होवे । मन्थ् +यासुट् +तिप् = मथ्यात् (८५) अमन्थीत् । अमन्थिष्यत् ॥ [कुथि, पुथि, लुथि, मथि] हिंसासंक्लेशनयोः (मारना,और अति दुःख देना) (१२७) से नुम् होके । कुन्थति । चुकुन्थ । कुन्थिता । कुन्थिष्यति । कुन्थिषति । कुन्थिषाति । कुन्थतु । अकुन्थत् । कुन्थेत् । कुन्थ्यात् । इदित् के होने से (कुन्थ्यात्) में (१३९)से नकार का लोप नहीं हुआ । अकुन्थीत् । अकुन्थिष्यत् । पुथि आदि के रूप कुथि के समान होते हैं ॥ [षिधु] गत्याम् (ज्ञान,गमन, प्राप्ति) यहां धातु के आदि षकार को स होकर । सेधति । सेधतः सेधन्ति सिषेध । सिसिधतुः । सिसिधुः । सेधिता । सेधिष्यति । सेधिषति । सेधिषाति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । [षिधू] शास्त्रे माङ्गल्ये च (शिक्षा और मङ्गलाचरण) इस धातु के सामान्यरूप तो पूर्व सिधू धातु के समान हैं और दीर्घ ऊकार इत् गया है इसलिये विशेष है ॥ १३९ ॥

१४०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४४ ॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और ऊदित् धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो । (लिट्) सिषेध । सिषिधतुः । सिषिधुः । अनिट् पक्ष में । सिध्—थल् ॥ १४० ॥

१४१—झषस्तथोर्धोऽधः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४० ॥

धा धातु को छोड़ के झष् प्रत्याहार से परे जो त और थ उन को ध आदेश हो । यहां थल् के थकार को ध होकर । सिसिध्+ध=सिषेद्ध । यहां पूर्व धकार को झष् के परे जश्त्व हो जाता है ।पक्ष में । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिध्व । सिषिधिव । सिषिध्म । सिषिधिम (लुट्) सिध्+तास्+डा=सेद्धा । यहां भी पूर्ववत् तास् के तकार को धकार और पूर्व को जश्त्व होता है । सेद्धारौ । सेद्धारः । सेद्धासि । सेद्धास्थः । सेद्धास्थ । सेद्धास्मि । सेद्धास्वः । सेद्धास्मः । सेट् पक्ष में । सेधिता । सेधितारौ । सेधितारः । इत्यादि (लृट्) सिध्+स्य+तिप्=सेत्स्याति । यहां खर् के परे (झल्) धकार को (खरि च) सूत्र से (चर्) तकार हो जाता है । सेत्स्यतः । सेत्स्यन्ति । सेधिष्यति । सेधिष्यतः । सेधिष्यन्ति (लेट्) सेत्सति । सेत्साति ।

सेधिषति । सेधिषाति । सेत्सत् । सेत्सात् । सेत्सद् । सेत्साद् । सेधति । सेधाति । इत्यादि । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । सिध्यास्ताम् । सिध्यासुः । (लुङ्) अनिट् पक्ष में । अट्+सिध्+सिच्+तिप्=असैत्सीत् (१२५) (१३२) ॥ १४१ ॥

१४२—झलो झलि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २६ ॥

झल् से परे जो सकार उस का लोप हो झल् परे हो तो। असिध्+स्+ताम्=असैद्धाम् । यहां सलोप होने के पश्चात् । ताम् के तकार को ध और पूर्व को जश्त्व हो जाता है । असिध्+स्+झि=असैत्सुः । असिध्+स्+ईट्+सिप्=असैत्सीः । असिध्+स्+थस्=असैद्धम् । असैद्ध । असैत्सम् । असैत्स्व । असैत्स्म । सेट् पक्ष में । असेधीत् । असेधिष्टाम् । असेधिषुः । इत्यादि । (लृङ्) अट्+सिध्+इट्+स्य+तिप्=असेत्स्यत् । असेत्स्यताम् । असेत्स्यन् । असेत्स्यः । असेत्स्यतम् । असेत्स्यत । असेत्स्यम् । असेत्स्याव । असेत्स्याम । सेट् पक्ष में । असेधिष्यत् । असेधिष्यताम् । असेधिष्यन् ॥ [खादृ] भक्षणे (खाना) इस धातु का ऋकार इत् जाता है । खादति । चखाद । खादिता । खादिष्यति । खादिषति । खादिषाति । खादतु । अखादत् । खादेत् । खाद्यात् । अखादीत् । अखादिष्यत् ॥ [खद] स्थैर्य्ये हिंसायां च (स्थिर होना, मारना) और चकार से भक्षण अर्थ का भी समुच्चय होता है । खदति । खद्+खद्+णल्=चखाद (१२६)। चखदतुः । चखदुः । चखदिथ । चखदथुः । चखद ॥ १४२ ॥

१४३—णलुत्तमो वा ॥ अ० ॥ ७ । १ । ९१ ॥

उत्तम पुरुष का णल् आदेश विकल्प करके णित्संज्ञक होवे । स्वाभाविक णित् को विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है । चखाद । चखद । णित्पक्ष में वृद्धि होती है अन्यत्र नहीं । खदिता । खदिष्यति । खदिषति । खदिषाति । खदतु । अखदत् । खदेत् । खद्यात् ॥ १४३ ॥

१४४—अतो हलादेर्लघोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७ ॥

परस्मैपदविषयक इडादि सिच् परे हो तो हलादि अङ्ग के लघु अकार को विकल्प करके वृद्धि होवे । अखादीत् । अखदीत् । यहां इडादि सिच् में वृद्धि का निषेध प्राप्त है इसलिये विधान है । अखदिष्यत् ॥ [बद] स्थैर्य्ये (स्थित होना) बदति । बबाद । बेदतुः । बेदुः ॥ १४४ ॥

१४५—थलि च सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२१ ॥

सेट् थल् परे हो तो लिट् लकार को मान के जिस धातु के आदि को कोई आदेश न हुआ हो उस के अभ्यास का लोप और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकारादेश हो जावे। बद्+बद्+इट्+थल् = बेदिथ । बेदथुः । बेद । बबाद । बबद । बेदिव । बेदिम । बादिता । बदिष्यति । बादिषति । बादिषाति । बदिषति । बदिषाति । बदति । बदाति । बदतु । अबदत् । बदेत् । बद्यात् अबादीत् (१४४) अबदीत् ॥ [गद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) गदति । जगाद । जगदतुः । गदिता । गदिष्यति । अगादीत् । अगदीत् । इत्यादि ॥ [रद] विलेखने (काटना और जोतना) रदति । रराद । रदिता । अरादीत् । अरदीत् ॥ [णद] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द होना) ॥ १४५ ॥

१४६—णो नः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६५ ॥

धातु के आदि णकार को नकारादेश होवे । नदति । ननाद । नेदतुः । नेदुः । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद । ननद । नेदिव । नेदिम । नादिता । नदिष्यति । नादिषति । नादिषाति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत् । अनदीत् । णोपदेश धातुओं की व्यवस्था ॥ भा०—सर्वे नादयो णोपदेशाः । नृति, नन्दि, नर्दि, नक्कि, नाटि, नाथृ, नाधृ, नृ वर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६५ ॥ नकारादि धातु सब णोपदेश समझने चाहियें परन्तु नृति आदि धातुओं को छोड़ के । अर्थात् नृति आदि णोपदेश नहीं क्योंकि णोपदेशों को कहा कार्य्य नृति आदि को नहीं होगा ॥ [अर्द] गतौ * याचने च (मांगना) अर्दति । अर्दतः । अर्दन्ति ॥ १४६ ॥

१४७—तस्मान्नुड् द्विहलः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७१ ॥

दीर्घ किये हुए अभ्यास के आकार से परे जो द्विहल् धातु उसको नुट् का आगम होवे । नुट् टित् होने से अभ्यास से परे द्वितीय भाग के आदि में होता है । आ+नुट्+अर्द्+णल् = आनर्द । आनर्दतुः । आनर्दुः । आनर्दिथ । आनर्दथुः । आनर्द२ । आनर्दिव । आनर्दिम । अर्दिता । अर्दिष्यति । अर्दिषति । अर्दिषाति । अर्दतु । आर्दत् ।

* इस बात पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि (गति, हिंसा) आदि अर्थ जो अनेक धातुओं में बहुधा आते हैं उन के अर्थ भाषा में बार २ नहीं लिखेंगे और जिस अर्थ के साथ चकार पढते हैं वहां पूर्व धातु के अर्थ का समुच्चय सर्वत्र समझना चाहिये ॥

अर्देत् । अर्द्यात् । आर्दीत् । आर्दिष्टाम् । आर्दिषुः । आर्दिष्यत् ॥ [नर्द, गर्द] शब्दे (शब्द होना) नर्दति । गर्दति । ननर्द । जगर्द । नर्दिता । नर्दिष्यति । नर्दिषति । नर्दिषाति । नर्दतु । अनर्दत् । नर्देत् । नर्द्यात् । अनर्दीत् । अनर्दिष्यत् ॥ [तर्द] हिंसायाम् (मारना) तर्दति । ततर्द ॥ [कर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दित शब्द करना) कर्दति । चकर्द । अकर्दीत् ॥ [खर्द] दन्तशूके (दांतों से काटना) खर्दति । चखर्द । अखर्दीत् । अखर्दिष्यत् ॥ [अति, अदि] बन्धने (बांधना) (१२७) अन्तति । अन्दति । आ+अन्त्+णल् (१४६) = आनन्त । आनन्द । अन्तिता । अन्तिष्यति । अन्तिषति । अन्तिषाति । अन्ततु । आन्तत् । अन्तेत् । अन्त्यात् । आन्तीत् । आन्तिष्यत् ॥ [इदि] परमैश्वर्य्ये (विद्या, धन, पुत्रादि की प्राप्ति) इद्+शप्+तिप्= इन्दति । यह धातु नुमागम होने के पश्चात् इजादि गुरुमान् हो जाता है । फिर (१००) (१०१) (१०२) (१०३) इत्यादि सूत्रों से इन्द्+आम्+कृ+णल् = इन्दाञ्चकार । इन्दाञ्चक्रतुः । इन्दाञ्चक्रुः ॥ १४७ ॥

१४८—कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । १३ ॥

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु इन धातुओं से परे जो लिट् वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । कृ आदि सब धातु अनिट् हैं इन से परे सामान्य आर्द्धधातुक को इट् का निषेध हो ही जाता. फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि जितने अनिट् धातु हैं उन सब से परे लिट् को इडागम हो जावे इन कृ आदि से परे न हो । इसी नियम से। एधाञ्चकृषे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । ऊर्दाञ्चकृषे । इत्यादि में इट् नहीं होता और थल् में विशेष है ॥ १४८ ॥

१४९—ऋतो भारद्वाजस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६३ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋकारान्त धातु उस से परे थल् वलादि आर्द्धधातुक को भारद्वाज आचार्य के मत में इट् का आगम न होवे । इन्दाञ्चकृ+थल् = इन्दाञ्चकर्थ । थल् के पित् होने से गुण हो जाता है । इन्दाञ्चक्रथुः । इन्दाञ्चक्र । इन्दाञ्चकार (१४३) इन्दाञ्चकर । इन्दाञ्चकृव। इन्दाञ्चकृम । इन्दिता । इन्दिष्यति । इन्दिषति । इन्दिषाति । इन्दतु । ऐन्दत् । इन्देत् । इन्द्यात् । ऐन्दीत् । ऐन्दिष्यत् ॥ [बिदि, भिदि] अवयवे (अवयव करना) बिन्दति । भिन्दति । बिबिन्द । बिभिन्द । बिन्दिता । बिन्दिष्यति । बिन्दिषाति । बिन्दिषाति । बिन्दतु। अबिन्दत् । बिन्देत् । बि-

न्द्यात् । अबिन्दीत् । अबिन्दिष्यत् ॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति । जगण्ड । गण्डिता । गण्डिष्यति ॥ [णिदि] कुत्सायाम् (निन्दा) निन्दति । निनिन्द ॥ [टुनदि] समृद्धौ (सम्पत् का होना) नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति ॥ १४९ ॥

१५०—आदिर्ञिटुडवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५ ॥

धातु के आदि जो ञि, टु और डु इन की इत्संज्ञा हो । यहां टुनदि धातु के टु की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है ॥ [चदि] आह्लादने दीप्तौ च (आनन्द और प्रकाश का होना) चन्दति । चचन्द ॥ [त्रदि] चेष्टायाम् (अवयवों का चलाना) त्रन्दति । तत्रन्द । त्रन्दिता ॥ (कदि, क्रदि, क्लदि) आह्वाने रोदने च (बुलाना, रोना) कन्दति । क्रन्दति । क्लन्दति । चकन्द । चक्रन्द । चक्लन्द । कन्दिता । कन्दिष्यति । कन्दिषति । कन्दिषाति । कन्दतु । अकन्दत् । कन्देत् । कन्द्यात् । अकन्दीत् । अकन्दिष्यत् ॥ [क्लिदि] परिदेवने (क्लेश होना) क्लिन्दति । चिक्लिन्द । क्लिन्दिता ॥ [शुन्ध] शुद्धौ (पवित्र करना) शुन्धति । शुशुन्ध । शुन्धिता । शुन्धिष्यति । शुन्धिषति । शुन्धिषाति । शुन्धतु । अशुन्धत् । शुन्धेत् । शुन्ध्+यासुट्+तिप्=शुध्यात् (१३९) । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्यत् ॥ अतादय उदात्ता उदात्तेतोऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ द्वानवतिः कवर्गीयान्ताः । अब आगे कवर्गीयान्त ९२ धातुओं का व्याख्यान है उन में प्रथम शीकृ आदि ४२ बयालीस आत्मनेपदी हैं ॥ [शीकृ] सेचने (सींचना) ऋकार की इत्संज्ञा । एधृ के समान प्रयोगसिद्धि जानो । शीकते । शिशीके । शीकिता । शीकिष्यते । शीकिषतै । शीकिषातै । शीकताम् । अशीकत । शीकेत । शीकिषीष्ट । अशीकिष्ट । अशीकिष्यत ॥ [लोकृ] दर्शने (देखना) लोकते । लोकेते । लोकन्ते । लोकसे । लोकेथे । लोकध्वे । लोके । लोकावहे । लोकामहे । लुलोके । लुलोकाते । लुलोकिरे । लुलोकिषे । लुलोकाथे । लुलोकिध्वे । लुलोके । लुलोकिवहे । लुलोकिमहे । लोकिता । लोकितारौ । लोकितारः । लोकितासे । लोकितासाथे । लोकिताध्वे । लोकिताहे । लोकितास्वहे । लोकितास्महे । लोकिष्यते । लोकिष्येते । लोकिष्यन्ते । लोकिष्यसे । लोकिष्येथे । लोकिष्यध्वे । लोकिष्ये । लोकिष्यावहे । लोकिष्यामहे । लोकिषतै । लोकिषातै । लोकिषते । लोकिषाते । लोकतै । लोकातै । लोकते । लोकाते । लोकिषैते २ । लोकैते २ । लोकिषन्तै । लोकिषान्तै । लोकिषन्ते । लोकिषान्ते । लोकन्तै । लोकान्तै । लोकन्ते । लोकान्ते । लोकिषसै । लोकिषासै । लोकिषसे । लोकिषासे । लोकसै । लोकासै । लोकसे । लोकासे । लोकिषैथे २ ।

लोकैथे २ । लोकिषध्वै । लोकिषाध्वै । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकध्वै । लोकाध्वै । लोकध्वे । लोकाध्वे । लोकिषे २ । लोकिषे २ । लोकै २ । लोके २ । लोकिषावहै २। लोकिषावहे २ । लोकावहै २ । लोकावहे २। लोकिषामहै २। लोकिषामहे २। लोकामहै २। लोकामहे २। लोकताम् । लोकेताम् । लोकन्ताम् । लोकस्व । लोकेथाम् । लोकध्वम् । लोकै । लोकावहै । लोकामहै । अलोकत । अलोकेताम् । अलोकन्त । अलोकथाः । अलोकेथाम् । अलोकध्वम् । अलोके । अलोकावहि । अलोकामहि ॥ लोकेत । लोकेयाताम् । लोकेरन् । लोकेथाः । लोकेयाथाम् । लोकेध्वम् । लोकेय । लोकेवहि । लोकेमहि । लोकिषीष्ट । लोकिषीयास्ताम् । लोकिषीरन् । लोकिषीष्ठाः । लोकिषीयास्थाम् । लोकिषीध्वम् । लोकिषीय । लोकिषीवहि । लोकिषीमहि । अलोकिष्ट । अलोकिषाताम् । अलोकिषत । अलोकिष्ठाः । अलोकिषाथाम् । अलोकिध्वम् । अलोकिषि । अलोकिष्वहि । अलोकिष्महि । अलोकिष्यत । अलोकिष्येताम् । अलोकिष्यन्त । अलोकिष्यथाः । अलोकिष्येथाम् । अलोकिष्यध्वम् । अलोकिष्ये । अलोकिष्यावहि । अलोकिष्यामहि ॥ [श्लोकृ] सङ्घाते (इकट्ठा करना) इस धातु का अर्थ योगरूढ़ होने से धर्म का सञ्चय (कीर्ति) और पदवाक्यों का संचय (श्लोक) कहाता है । श्लोकते । शुश्लोके । श्लोकिता । श्लोकिष्यते । श्लोकिषतै । श्लोकिषातै । श्लोकताम् । अश्लोकत । श्लोकेत । श्लोकिषीष्ट । अश्लोकिष्ट । अश्लोकिष्यत ॥[द्रेकृ, ध्रेकृ] शब्दोत्साहयोः (शब्द करना और उत्साह होना) द्रेकते । दिद्रेके । द्रेकिता । द्रेकिष्यते । द्रेकिषतै । द्रेकिषातै । द्रेकताम् । अद्रेकत । द्रेकेत । द्रेकिषीष्ट । अद्रेकिष्ट । अद्रेकिष्यत । ध्रेकते । दिध्रेके ॥ [रेकृ] शङ्कायाम् (सन्देह करना) रेकते । रिरेके । रेकिता । रेकिष्यते ॥ [सेकृ, स्रेकृ, स्रकि, श्रकि, श्लकि] गत्यर्थाः । इन तीनों का गति अर्थ है । सेकते । सिसेके । स्रेकते । सिस्रेके । स्रङ्कते । सस्रङ्के । श्रङ्कते । शश्रङ्के । श्लङ्कते । शश्लङ्के ॥ [शकि] शङ्कायाम् (संशय होना) शङ्कते । शशङ्के ॥ [अकि] लक्षणे (चिन्ह) अङ्कते । अङ्क+अङ्क्+एश्=आनङ्के (११०) (१४७) आनङ्काते । आनङ्किरे । अङ्किता । अङ्किष्यते ॥ [वकि] कौटिल्ये (टेढ़ा होना) वङ्कते । ववङ्के । वङ्किता । वङ्किष्यते । वङ्किषतै । वङ्किषातै । वङ्कताम् । अवङ्कत । वङ्केत । वङ्किषीष्ट । अवङ्किष्ट । अवङ्किष्यत ॥ [मकि] मण्डने (भूषण) मङ्कते । ममङ्के ॥ [ककि] लौल्ये (चलितहोना) कङ्कते । चकङ्के [कुकृ, वृकृ] आदाने (लेना) कोकते चुकुके । वर्कते । ववृके ॥ १५० ॥

१५१—वा०—ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

जिन की उपधा में ऋकार हो उन धातुओं से परे लिट् प्रत्यय, गुण होने से पूर्व विप्रतिषेध कर के कित्वत् हो जावे। प्रयोजन यह है कि ऋदुपध धातुओं से भी लुट् आदि आर्द्धधातुक प्रत्ययों के परे गुण को अवकाश है। और अपित् लिट् अतुस् आदि में संप्रसारण गुण का निषेध होना कित्त्व को अवकाश है और (ववृके) आदि में परत्व से गुण प्राप्त है सो न हो जावे॥ [चक] तृप्तौ प्रतिघाते च (तृप्ति होना और मारना) चकते। चेके। चेकाते। चेकिरे। चकिता। चाकिष्यते। चाकिषतै। चाकिषातै। चकिषतै। चकिषातै। चाकिषते। चाकिषाते। चाकिषते। चकिषाते। चकतै। चकातै। चकते। चकाते। चाकिषेते२। चकिषेते२। चकेते२। इत्यादि। चकताम्। अचकत। चकेत। चाकिषीष्ट। अचाकिष्ट। अचाकिष्यत॥ [काकि, वाकि, स्वाकि, त्राकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वस्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि, लघि] गत्यर्थाः। ये १५ पन्द्रह धातु गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) अर्थ में हैं। कङ्कते। चकङ्के। वङ्कते। ववङ्के। स्वङ्कते। सस्वङ्के। त्रङ्कते। तत्रङ्के। ढौकते। डुढौके। त्रौकते। तुत्रौके॥ १५१॥

१५२—वा०—सादेशे सुब्धातुष्ठिवुष्वस्कतीनां सत्वप्रतिषेधः॥

सुब्धातु (नामधातु) ष्ठिवु और ष्वस्क धातुओं के आदि षकार को दन्त्य सकार न होवे। (सुब्धातु) षोढ इवाचरति, षोढीयति। षण्डीयति। ष्ठिवु धातु आगे आवेगा (ष्वस्क) ष्वस्कते। ष्वस्केते। ष्वस्कन्ते। पष्वस्के। ष्वस्किता। ष्वस्किष्यते। ष्वस्किषतै। ष्वस्किषातै। ष्वस्कताम्। अष्वस्कत। ष्वस्केत। ष्वस्किषीष्ट। अष्वस्किष्ट। अष्वस्किष्यत। वस्कते। ववस्के। मस्कते। ममस्के। टेकते। टिटिके। टिटिकाते। टिटिकिरे। टेकिता। टेकिष्यते। टेकिषतै। टेकिषातै। टेकताम्। अटेकत। टेकेत। टेकिषीष्ट। अटेकिष्ट। अटेकिष्यत। टीकते। टिटीके। तेकते। तितिके। तीकते। तितीके। रङ्घते। ररङ्घे। लङ्घते। ललङ्घे॥ [लघि] भोजननिवृत्तौ च (लङ्घन करना) [अघि, वघि, मघि] गत्याक्षेपे (निन्दित चलना) अङ्घते। आनङ्घे। आनङ्घाते। आनङ्घिरे। अङ्घिता। अङ्घिष्यते। वङ्घते। ववङ्घे। मङ्घते। ममङ्घे॥ [मघि] कैतवे च (धूर्त्तपना)। [राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ] सामर्थ्ये (समर्थ होना) राघते। रराघे। लाघते। ललाघे। द्राघते। दद्राघे। ध्राघते। दध्राघे॥ [द्राघृ] आयामे च

(विस्तार होना) [श्लाघृ] कत्थने (प्रशंसा करना) श्लाघते । शश्लाघे । श्लाघिता । श्लाघिष्यते । श्लाघिषतै । श्लाघिषातै । श्लाघताम् । अश्लाघत । श्लाघेत । श्लाघिषीष्ट । अश्लाघिष्ट । अश्लाघिष्यत । इति शीकादय उदात्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः समाप्ताः ॥

ये शीक आदि सेट् आत्मनेपदी ४२बयालीस धातु पूरे हुए। अथ परस्मैपदिनः । अब आगे फक्क आदि परस्मैपदी ५० धातु लिखते हैं [फक्क] नीचैर्गतौ (मन्द २ चलना वा अयोग्य व्यवहार करना) फक्कति । पफक्क । फक्किता । फक्किष्यति । फक्किषति । फक्किषाति । फक्कतु । अफक्कत् । फक्केत् । फक्क्यात् । अफक्कीत् । अफक्किष्यत्॥ [तक] हसने (हसना) तकति । तताक । तेकतुः । तेकुः । तेकिथ । तेकथुः । तेक । तताक । ततक । तेकिव । तेकिम । तकिता । तकिष्यति । ताकिषति । ताकिषाति । तकिषति । तकिषाति । तकति । तकाति । तकतु । अतकत । तकेत् । तक्यात् । अताकीत् । अतकीत् । अताकिष्टाम् । अतकिष्टाम् । अतकिष्यत ॥ [तकि] कृच्छ्रजीवने (कठिनता से जीवना) तङ्कति । ततङ्क । तङ्किता ॥ [बुक्क] भषणे (भूंसना) बुक्कति । बुबुक्क । बुक्किता । बुक्किष्यति ॥ [कख] हसने । कखति । चकाख । कखिता । अकाखीत् । अकखीत् ॥ [ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, ध्राखृ] शोषणालमर्थयोः (सूखना, भूषण, पर्य्याप्ति और निषेध) ऋकार की इत्संज्ञा । ओखति । राखति । ओखाञ्चकार (१००) इत्यादि सूत्र लगते हैं । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । औखत् । ओखेत् । ओख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् ॥ [उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्गु, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, श्रगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि] गत्यर्थाः । ओखति । उ–ओख्–णल् । इस अवस्था में ॥ १५२ ॥

१५३–अभ्यासस्याऽसवर्णे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश हों। यह सूत्र यणादेश का बाधक है । और गुण हो जाने से यह धातु इजादि गुरुमान् तो हो जाता है परन्तु सन्निपातपरिभाषा अर्थात् जो जिसके आश्रय से समर्थ होता है वह उस का विरोधी न होना चाहिये । यहां लिडादेश (णल्) प्रत्यय को मान के गुण होता है, आम् प्रत्यय के होनेसे उसी लिडादेश णल् का लुक् हो जावे इसलिये

आम् नहीं होता । उ+ओख्+णल्=उवोख । ऊखतुः। यहां सवर्ण अच् के परे उवङ् नहीं होता,सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है । ऊखुः । उवोखिथ । ऊखथुः । ऊख।उवोख । ऊखिव । ऊखिम । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । ओखतात् । औखत् ओखेत् । उख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् । उङ्खति । उङ्खाञ्चकार । उङ्खाञ्चक्रतुः । उङ्खाञ्चक्रुः । उङ्खाम्बभूव । उङ्खामास । ववाख । ववखतुः (१२८)वङ्खति । ववङ्ख । मखति । ममाख । मेखतुः । मेखुः । मखिता । मखिष्यति । माखिषति । माखिषाति । मखिषति । मखिषाति । मखाति । मखाति । माखिषत् । माखिषात् । माखिषद् । माखिषाद् । मखिषत् मखिषात् । मखिषद् । मखिषाद् । मखत् । मखात् । मखद् । मखाद् । इत्यादि । अमाखीत् । अमखीत् । नखति । ननाख । नेखतुः । नङ्खति । ननङ्ख । एखति । एयेख (१५३) एखिता । एखिष्यति । ऐखिषति । ऐखिषाति । एखतु । एखतात् । ऐखत् । एखेत् । इख्यात् । ऐखीत् । ऐखिष्यत् । इङ्खति । इङ्खाञ्चकार । ऐङ्खीत् । ईङ्खाञ्चकार । बल्गति। बबल्ग । रङ्गति। ररङ्ग । लङ्गति । ललङ्ग । अङ्गति । आनङ्ग (१४७) वङ्गति । ववङ्ग । इङ्गति । इङ्गाञ्चकार । इङ्गामास । इङ्गाम्बभूव । इङ्गिता । इङ्गिष्यति । इत्यादि ॥ [रिख, त्रख, त्रखि,शिखि] इत्यपि केचित् । रिख आदि चार धातु किन्हीं आचार्यों के मत में पूर्व उख आदि धातुओं के समान गत्यर्थ हैं । रेखति । रिरेख। रिरिखतुः । रेखिता । रेखिष्यति । रेखिषति । रेखिषाति । रेखतु । अरेखत् । रेखेत् । रिख्यात् । अरेखीत् । अरेखिष्यत् । त्रखति । तत्राख । त्रङ्खति । तत्रङ्ख । शिङ्खति । शिशिङ्ख ॥ [त्वगि] कम्पने च (कांपना) त्वङ्गति । तत्वङ्ग ॥ [युगि, जुगि, बुगि] वर्जने (वर्ज देना) युङ्गति । युयुङ्ग ॥ (घग्घ) हसने (हंसना) घघति । जघाघ । जघघ । घाघिषति । घाघिषाति । घघिषति । घघिषाति । अघाघीत् । अघघीत् । अघघिष्यत् ॥ [मघि] मण्डने (समाधान करना) मङ्घति । ममङ्घ ॥ [लाघि] शोषणे । लङ्घति । ललङ्घ ॥ [शिघि] आघ्राणे (सूंघना) शिङ्घति । शिशिङ्घ । शिङ्घिता । शिङ्घिष्यति । शिङ्घिषति । शिङ्घिषाति । शिङ्घतु । अशिङ्घत् । शिङ्घेत् । शिङ्घ्यात् । अशिङ्घीत् । अशिङ्घिष्यत् ॥इति फक्कादय उदात्ता उदात्तेतो द्विपंचाशत् समाप्ताः ॥ फक्क आदि ५२ धातु समाप्त हुए ॥

अथ चवर्गीयान्तास्त्रिनवतिः । अब यहां से आगे ९३ त्रानवे धातुओं का व्याख्यान है ॥ [वर्च] दीप्तौ (प्रकाश होना) वर्चते । वर्चिता । वर्चिष्यते । वार्चिषतै । वर्चिषातै । वर्चताम् । अवर्चत । वर्चेत । वर्चिषीष्ट । अवर्चिष्ट । अवर्चिष्यत ॥

[षच]सेचने सेवने च(सींचना,सेवा करना)सचते। सेचे। सेचाते।सेचिरे।सचिता।सचिष्यते। साचिषतै। साचिषातै। साचिषते।साचिषाते। सचिषतै।सचिषातै। सचिषते।साचिषाते। सचतै।सचातै।सचते। सचाते। सचताम्। असचत। सचेत। सचिषीष्ट। असचिष्ट। असचिष्यत ॥ [लोचृ] दर्शने (देखना) लोचते। लुलोचे। लोचिषतै। लोचिषातै ॥ [शच] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) शचते। शेचे। शाचिषतै। शाचिषातै। अशचिष्ट ॥ [श्वच, श्वचि] गतौ। श्वचते। श्वञ्चते। शश्वचे। शश्वञ्चे। श्वाचिषतै ॥ [कच] बन्धने (बांधना) कचते। चकचे। कचिता। कचिष्यते। काचिषतै। काचिषातै। कचताम्। अकचत। कचेत।कचिषीष्ट। अकचिष्ट। अकचिष्यत॥[कचि, काचि]दीप्तिबन्धनयोः (प्रकाश और बांधना) कञ्चते। काञ्चते। चकञ्चे। चकाञ्चे। [मच,मुचि] कल्कने (अभिमान करना) मचते। मुञ्चते। मेचे। मुमुञ्चे। माचिता। मचिष्यते। माचिषतै। माचिषातै। मचताम्। अमचत। मचेत। मचिषीष्ट। अमचिष्ट। अमचिष्यत ॥ [मचि] धारणोच्छ्रायपूजनेषु (धारणा, बढ़ना, सत्कार करना) मञ्चते। ममञ्चे। मञ्चिषतै। मञ्चिषातै ॥ [पचि] व्यक्तीकरणे (प्रकट करना) पञ्चते। पपञ्चे। पञ्चिषतै। पञ्चिषातै ॥ [ष्टुच] प्रसादे (प्रसन्न होना) स्तोचते। तुष्टुचे। स्तोचिषतै। स्तोचिषातै। स्तोचताम्। अस्तोचत। स्तोचेत। स्तोचिषीष्ट। अस्तोचिष्ट। अस्तोचिष्यत ॥ [ऋज] गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु। (गति- ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्थिति, सञ्चय, समीप में वस्तु जोड़ना) अर्जते। ऋज् +ऋज्+एश्=आनृजे। (१०६) (३८) (११०) (१४७) आनृजाते। आनृजिरे। अर्जिता। अर्जिष्यते। अर्जिषतै। अर्जिषातै। अर्जताम्। आर्जत। अर्जेत। अर्जिषीष्ट। आर्जिष्ट। आर्जिष्यत॥ [ऋजि,भृजी] भर्जने (भूंजना) ऋञ्जते। भर्जते। ऋञ्जाञ्चक्रे। बभृजे। ऋञ्जिता। भर्जिता। ऋञ्जिष्यते। आर्ञ्जिष्ट। अभर्जिष्ट ॥ [एजृ, भ्रेजृ, भ्राजृ] दीप्तौ (प्रकाश होना) एजते। एजाञ्चक्रे। एजाम्बभूव। एजामास। एजिता। एजिष्यते। एजिषतै। एजिषातै। एजताम्। ऐजत। एजेत। एजिषीष्ट। ऐजिष्ट। ऐजिष्यत। भ्रेजते। बिभ्रेजे। भ्राजते। बभ्राजे। इत्यादि ॥ [ईज] गतिकुत्सनयोः (गति,निन्दा) ईजते। ईजाञ्चक्रे। ईजाम्बभूव। ईजामास।ईजिता। ईजिष्यते। ईजिषतै। ईजिषातै। ईजताम्। ऐजत। ईजेत। ईजिषीष्ट। ऐजिष्ट। ऐजिष्यत। इति वर्चादय उदात्ता अनुदात्तेत एकविंशतिः समाप्ताः ॥

अथ द्विसप्ततिर्वृज्यन्ताः परस्मैपदिनः। अब यहां से आगे परस्मैपदी ७२ बहत्तर

धातुओं का व्याख्यान है ॥ [शुच] शोके (शोचना) शोचति। शुशोच। शुशुचतुः। शोचिता। शोचिष्यति। शोचिषति। शोचिषाति। शोचिषत्। शोचिषात्। शोचिषद्। शोचिषाद्। शोचति। शोचाति। शोचतु। अशोचत्। शोचेत्। शुच्यात्। अशोचीत्। अशोचिष्यत् ॥ [कुच] शब्दे तारे (एकरस शब्द होना) कोचति। चुकोच। कोचिषाति। कोचिषाति ॥ [कुञ्च, क्रुञ्च] गतिकौटिल्याल्पीभावयोः (टेढ़ा चलना, थोड़ा होना) कुञ्चति। क्रुञ्चति। चुकुञ्च। चुक्रुञ्च। कुच्यात् (१३९) क्रुच्यात् ॥ [लुञ्च] अपनयने (दूर करना) लुञ्चति। लुलुञ्च। लुञ्चिता। लुच्यात् (१३९)। अलुञ्चुत्। अलुञ्चिष्यत् ॥ [अञ्चु] गतिपूजनयोः (गति और पूजा) अञ्चति। अञ्चिषति। अञ्चिषाति। अच्यात् * ॥ [वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुचु, म्लुचु] गत्यर्थाः। वञ्चति। वच्यात्। चच्यात्। तच्यात्। त्वच्यात्। म्रुच्यात्। म्लुच्यात् ॥ १५३ ॥

१५४–जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५८ ॥

जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उसके स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे। अम्रुचत्। अम्रोचीत्। अम्लुचत्। अम्लोचीत् ॥ [ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु] स्तेयकरणे (चोरी करना) ग्रोचति। जुग्रोच। जुग्रुचतुः। ग्रोचिता। ग्रोचिष्यति। ग्रोचिषाति। ग्रोचिषाति। ग्रोचतु। अग्रोचत्। ग्रोचेत्। ग्रुच्यात्। अग्रुचत्। अग्रोचीत्। ग्लोचति। ग्लुच्यात्। अग्लुचत्। अग्लोचीत्। कोजति। चुकोज। कुज्यात्। अकोजीत्। खुज्यात्। अखोजीत् ॥ [ग्लुञ्चु, षस्ज] गतौ। ग्लुञ्चति। जुग्लुञ्च। ग्लुच्यात् (१३९)। अग्लुचत्। अग्लोचीत्। सज्जति †। ससज्ज। सज्जिता। सज्जिष्यति। सज्जिषति। सज्जिषाति। सज्जतु। असज्जत्। सज्जेत्। सज्ज्यात्। असज्जीत्। असज्जिष्यत् ॥ सज्जतिः स्वरितेदित्येके। किन्हीं आचार्यों के मत में यह सज्ज धातु स्वरितेत् अर्थात् आत्मनेपदी भी है इस से। सज्जते। ससज्जे। इत्यादि प्रयोग भी होते हैं ॥ [गुजि] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द का होना) गुञ्जति।

* अञ्चु धातु के नकार का लोप गति अर्थ में ही होता है और (नाञ्चेः पूजायाम्। अ० ६। ४। ३०) इस सूत्र से पूजा अर्थ में नकार का लोप नहीं होता वहां (अञ्च्यात्) प्रयोग होता है ॥

† षस्ज धातु के हल् सकार को (स्तोः श्चुना श्चुः) इस सूत्र से शकार और उस शकार को (झलां जश् झशि) इस सूत्र से जकार हो जाता है ॥

जुगुञ्ज । गुञ्ज्यात् । अगुञ्जीत् । अगुञ्जिष्यत् ॥ [अर्च] पूजायाम् । अर्चति । आनर्च (११०) (१४७)। अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चिषति । अर्चिषाति। अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् ॥ [म्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे । म्लेच्छति । मिम्लेच्छ ॥ [लछ,लाछि] लक्षणे (चिन्ह) लच्छति । ललच्छ । लच्छिता । लच्छिष्यति । लच्छिषति । लच्छिषाति । लच्छतु । अलच्छत् । लच्छेत् । लच्छ्यात् । अलच्छीत् । अलच्छिष्यत् । लाञ्छति । ललाञ्छ ॥ [वाछि] इच्छायाम् । वाञ्छति । ववाञ्छ ॥ [आछि] आयामे (विस्तार) आञ्छति । आञ्छ । आञ्छिता । आञ्छिष्यति ।आञ्छिषति । आञ्छिषाति। आञ्छतु । आञ्छत् । आञ्छेत् । आञ्छ्यात् । आञ्छीत्। आञ्छिष्यत् ॥ [ह्रीछ] लज्जायाम् । ह्रीच्छति। जिह्रीच्छ ॥ [हुर्छा] कौटिल्ये (कुटिलपन) (१३०) इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ होकर । हूर्च्छति । जुहूर्च्छ । हूर्च्छिता ।हूर्च्छिष्यति ।हूर्च्छिषति। हूर्च्छिषाति । हूर्च्छतु। अहूर्च्छत् । हूर्च्छेत् । हूर्च्छ्यात् । अहूर्च्छीत् । अहूर्च्छिष्यत् ॥ [मुर्छा] मोहसमुच्छ्राययोः (अज्ञान, बढ़ना) मूर्च्छति मुमूर्च्छ ॥ [स्फुर्छा] विस्तृतौ (विस्तार) स्फूर्च्छति । पुस्फूर्च्छ (१२४)। अस्फूर्च्छीत् ॥ [युच्छ] प्रमादे । युच्छति । युयुच्छ ॥ [उछि] उञ्छे (ऊंछना) उञ्छति । उञ्छाञ्चकार । उञ्छाम्बभूव । उञ्छामास ।उञ्छिता। उञ्छिष्यति । उञ्छिषति ।उञ्छिषाति । उञ्छतु । औञ्छत् । उञ्छेत् । उञ्छ्यात् । औञ्छीत् । औञ्छिष्यत् ॥ [उछी] विवासे (समाप्ति) व्युच्छति । उच्छति । उछी धातु के बहुधा वि उपसर्गपूर्वक ही प्रयोग आते हैं और इस धातु में छकार के परे तुगागम होने से इजादि गुरुमान् होने से आम् प्रत्यय प्राप्त है परन्तु उपदेश में इजादि गुरुमान् नहीं इस से आम् प्रत्यय नहीं होता ॥ [ध्रज, ध्रजि, धृज, धृजि, ध्वज, ध्वजि] गतौ। ध्रजति । ध्रञ्जति । धर्जति। धृञ्जति । ध्वजति । ध्वञ्जति। दध्राज । दध्रञ्ज । दधर्ज । दधृजतुः । दधृञ्ज । दध्वाज । दध्वज । अध्राजीत् । अध्रजीत् । अध्रञ्जीत् । अधर्जीत् । अधृञ्जीत् । अध्वाजीत् । अध्वजीत् । अध्वञ्जीत् । [कूज] अव्यक्ते शब्दे । कूजति । चुकूज । अकूजीत् ॥ [अर्ज, षर्ज] अर्जने (संचय करना) अर्जति । आनर्ज । अर्जिता । अर्जिष्यति । अर्जिषति । अर्जिषाति । अर्जतु । आर्जत्। अर्जेत्। अर्ज्यात् । आर्जीत्। आर्जिष्यत् । सर्जति ।ससर्ज। [गर्ज] शब्दे (गर्जना)गर्जति। जगर्ज ॥ [तर्ज] भर्त्सने (धमकाना) तर्जति ॥ [खर्ज] पूजने (सत्कार) खर्जति । चखर्ज ॥ [अज] गतिक्षेपणयोः(गति और फेंकना) अजति । अजतः । अजन्ति ॥ १५४।

१५५—अजेर्व्यघञपोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५६ ॥

घञ् और अप् प्रत्ययों को छोड़ के अन्य आर्द्धधातुकविषय में अज धातु को वी आदेश होवे । यहां लिट् में वी होकर । वी +वी+णल् = विवाय (६०) ॥१५५॥

१५६—एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ अ ०॥ ६ । ४ ।८२॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो अनेकाच् धातु का अवयव इवर्ण उस को अच् परे हो तो यण् आदेश हो जावे । वी + वी + अतुस् = विव्यतुः । विव्युः । यहां यणादेश होने के पश्चात् वकार की उपधा अभ्यास के इकार को (१३०) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है परंतु (स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत्) इस वार्त्तिक से दीर्घविधि के करने में लोपरूप जो अच् के स्थान में आदेश है वही स्थानिवत् न हो अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे, इस से यणादेश के स्थानिवत् हो जाने से दीर्घ नहीं होता । अब इस वी अनिट् धातु से परे थल् में (१४८) सूत्र के नियम से नित्य इडागम प्राप्त हुआ ॥ १५६ ॥

१५७—अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥ अ ० ॥ ७ । २ । ६१ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो अजन्त धातु उनसे परे जो थल् वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । फिर (१४९) सूत्र से भारद्वाज आचार्य के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से भारद्वाज के मत में इस वी धातु से परे थल् को इट् होता है अन्य ऋषियों के मत में नहीं। वि+वी+इट्+थल्=विवयिथ । विवेथ । विव्यथुः । विव्य । विवाय (१४३) विवय । यहां णित् के विकल्प होने से पक्ष में (२१) से गुण हो जाता है। विव्यिव । विव्यिम । और वलादि आर्द्धधातुकविषय में महाभाष्य के (इदमपि सिद्धं भवति प्राजितेति) इत्यादि व्याख्यानरूप प्रमाण से विकल्प कर के वी आदेश होता है इस से थल् में । आजिथ । यह भी प्रयोग होता है। (लुट्) वेता । वेतारौ । वेतारः । वेतासि । वेतास्थः । वेतास्थ । वेतास्मि । वेतास्वः । वेतास्मः । अजिता । अजितारौ । अजितारः । वेष्यति । वेष्यतः । वेष्यन्ति । अजिष्यति । वेषति । वेषाति । वेषत् । वेषात् । वेषद् । वेषाद् । वेषति । वेषाति । वेषत् । वेषात् । वेषद् । वेषाद् । आजिषति । आजिषाति । अजिषति । अजिषाति । इत्यादि । अजतु । आजत् । अजेत् । वीयात् ॥ १५७ ॥

१५८—सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । १ ॥

परस्मैपदविषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो इगन्त अङ्ग को वृद्धि होवे । अट्+वी+सिच्+तिप्=अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवैषीः । अवैष्टम् । अवैष्ट । अवैषम् । अवैष्व । अवैष्म । आजीत् । आजिष्टाम् । आजिषुः । अवेष्यत् । आजिष्यत् ॥ [तेज] पालने (पालना) तेजति । तितेज । तेजिता । तेजिष्यति । तेजिषति । तेजिषाति । तेजतु । अतेजत् । तेजेत् । तेज्यात् । अतेजीत् । अतेजिष्यत् । [खज] मन्थे (विलोडना) खजति । चखाज चखज । अखाजीत् । अखनीत् ॥[खजि]गतिवैकल्ये । (बुरे प्रकार चलना) खञ्जति । चखञ्ज ॥ [एजृ] कम्पने (कांपना) एजति । एजाञ्चकार । एजाम्बभूव । एजामास । एजिता । एजिष्यति । एजिषति । एजिषाति । एजतु । ऐजत् । एजेत् । एज्यात् । ऐजीत् । ऐजिष्यत् ॥ [टुओस्फूर्जा] वज्रनिर्घोषे (भयंकर शब्द होना) टु की इत्संज्ञा (१५०) और ओकार की (उपदेशे०) सूत्र से इत्संज्ञा होकर । स्फूर्जति । पुस्फूर्ज । स्फूर्जिता । स्फूर्जिष्यति । स्फूर्जिषति । स्फूर्जिषाति ॥ [क्षि] क्षये (नाश) यह धातु अकर्म्मक और अनिट् है । (२१) क्षयति । क्षयतः । क्षयन्ति । क्षयसि । क्षयथः । क्षयथ । क्षयामि । क्षयावः । क्षयामः । चिक्षाय (६०) ॥ १५८ ॥

१५९—अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ अ०॥६।४।७७॥

श्नु प्रत्यय, धातु और भ्रू शब्द इन के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश यथासंख्य करके हों अच् परे हो तो । क्षि+क्षि+अतुस्=चिक्षियतुः । चिक्षियुः । चिक्षयिथ । (१५८) (१४९) चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय । चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेतारौ । क्षेतारः । क्षेष्यति । क्षैषति । क्षैषाति । क्षेषति । क्षेषाति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ॥ १५९ ॥

१६०—अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २५ ॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय और सार्वधातुक विषय को छोड़ के यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो । क्षि+यासुट्+तिप्=क्षीयात् । क्षीयास्ताम् । क्षीयासुः । क्षीयाः । अक्षैषीत् । अक्षैष्टाम् । अक्षैषुः । अक्षैषीः । अक्षैष्टम् । अक्षैष्ट । अक्षैषम् । अक्षैष्व । अक्षैष्म । अक्षेष्यत् ॥ [क्षीज] अव्यक्ते शब्दे क्षीजति । चिक्षीज । अक्षीजीत् । अक्षीजिष्यत् ॥ [लज, लाजि] भर्जने । (भूंजना)

लजति । ललाज । ललज । लाजिषति । लाजिषाति । अलाजीत् । अलजीत् । लञ्जति । ललञ्ज ॥ [लाज, लाजि] भर्त्सने च (धमकाना) लाजति । ललाज । ललाजतुः । लाञ्जति ॥ [जज, जजि] युद्धे (लड़ाई) जजति । जजाज । जजज । जाजिषति । जाजिषाति । अजाजीत् । अजजीत् । जञ्जति । जजञ्ज ॥ [तुज] हिंसायाम् । तोजति । तुतोज । तुतुजतुः । तोजिता ॥ [तुजि] पालने च । चकार से हिंसा अर्थ भी जानो । तुञ्जति । तुतुञ्ज ॥ [गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि] शब्दार्थाः (शब्द होना) गजति । गञ्जति । गर्जति । गृञ्जति । मोजति । मुञ्जति । जगाज । जगञ्ज । जगर्ज । जगृञ्ज । मुमोज । मुमुञ्ज । अगाजीत् । अगजीत् ॥ [गज] मदे च (अहंकार) चकार से शब्दार्थ भी है ॥ [वज, व्रज] गतौ । वजति । ववाज । ववजतुः । ववजुः । ववाज । ववज । वाजिषति । वाजिषाति । वजतु । अवजत् । वजेत् । वज्यात् । अवाजीत् । अवजीत् । अवजिष्यत् । व्रजति । वव्राज । अव्राजीत् से (१३८) से नित्य वृद्धि होती है ॥ १६० ॥

१६१–तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ ६ । १ । ७ ॥

तुज आदि जिन धातुओं के अभ्यास को वेद में दीर्घादेश आवे उस की सिद्धि इस सूत्र से समझनी चाहिये । तूतुजानः । जागाज । मूमोज । वावाज । वाव्राज । दाधार । मामहानः । इत्यादि । यह सूत्र सामान्य करके प्रवृत्त होता है ॥

इति शुचादय उदात्ता उदात्तेतः त्विवर्जं परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ टवर्गीयान्ता द्वाविंशत्यधिकं शतम् । अब टवर्गान्त १२२ एकसौ बाईस धातुओं का व्याख्यान है उन में से प्रथम ३६ धातु आत्मनेपदी हैं ॥ [अट्ट] अतिक्रमणहिंसनयोः (उल्लंघना, मारना) अट्टते । आनट्टे । अट्टिता । अट्टिष्यते । अट्टिषतै । अट्टिषातै । अट्टताम् । आट्टत । अट्टेत । अट्टिषीष्ट । आट्टिष्ट । आट्टिष्यत ॥ [वेष्ट] वेष्टने (लपेटना) वेष्टते । विवेष्टे । अवेष्टिष्ट ॥ [चेष्ट] चेष्टायाम् (क्रिया) चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट ॥ [गोष्ट, लोष्ट] सङ्घाते (समुदाय) गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । गोष्टिष्यते । गोष्टिषतै । गोष्टिषातै । गोष्टताम् । अगोष्टत । गोष्टेत । गोष्टिषीष्ट । अगोष्टिष्ट । अगोष्टिष्यत । लोष्टते । लुलोष्टे ॥ [घट्ट] चलने । घट्टते । जघट्टे । घट्टिता ॥ [स्फुट] विकसने (फैलना) स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटिता । स्फोटिष्यते । स्फोटिषतै । स्फोटिषातै । स्फोटताम् । अस्फोटत । स्फोटेत । स्फोटिषीष्ट ।

अस्फोटिष्ट । अस्फोटिष्यत ॥ [आठ] गतौ । अण्ठते । आनण्ठे ॥ [वठि] एकचर्य्यायाम् (एक का सेवन) वण्ठते । ववण्ठे ॥ [मठि, कठि] शोके (शोचना) मण्ठते । ममण्ठे । कण्ठते । चकण्ठे । कण्ठिता। कण्ठिष्यते । कण्ठिषतै । कण्ठिषातै । कण्ठताम् । अकण्ठत । कण्ठेत । कण्ठिषीष्ट । अकण्ठिष्ट । अकण्ठिष्यत ॥ [मुठि] पालने (रक्षा) मुण्ठते । मुमुण्ठे ॥ [हेठ] विबाधायाम् (मूर्खता) हेठते । जिहेठे ॥ [एठ] च । एठते । एठाञ्चक्रे । एठाम्बभूव । एठामास ॥ [हिडि] गत्यनादरयोः (चलना, तिरस्कार) हिण्डते । जिहिण्डे । हिण्डिता । हिण्डिष्यते । हिण्डिषतै । हिण्डिषातै । हिण्डताम् । अहिण्डत । हिण्डेत । हिण्डिषीष्ट । अहिण्डिष्ट । अहिण्डिष्यत ॥ [हुडि] सङ्घाते । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [कुडि] दाहे (जलना) कुण्डते । चुकुण्डे ॥ [वडि] विभाजने (विभाग करना) वण्डते । ववण्डे ॥ [मडि] च । मण्डते ॥ [भडि] परिभाषणे (बहुत बोलना) भण्डते । बभण्डे । भण्डिता । भण्डिष्यते । भण्डिषतै । भण्डिषातै । भण्डताम् । अभण्डत । भण्डेत । भण्डिषीष्ट । अभण्डिष्ट । अभण्डिष्यत ॥ [पिडि] सङ्घाते । पिण्डते । पिपिण्डे ॥ [मुडि] मार्जने (शोधना) मण्डते । मुमुण्डे ॥ [तुडि] तोडने (तोड़ना) तुण्डते ॥[हुडि] वरणे (ग्रहण करना) हरण इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह धातु हरने अर्थ में है । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [चडि] कोपे (क्रोध) चण्डते । चचण्डे । चण्डिता । चण्डिष्यते । चण्डिषतै । चण्डिषातै । चण्डताम् । अचण्डत । चण्डेत । चण्डिषीष्ट । अचण्डिष्ट । अचण्डिष्यत ॥ [शडि] रुजायां सङ्घाते च (रोग, समुदाय) शण्डते । शशण्डे ॥ [तडि] ताडने (ताड़ना) तण्डते । ततण्डे ॥ [पडि] गतौ । पण्डते । पपण्डे ॥ [कडि] मदे (अहंकार) कण्डते । चकण्डे ॥ [खडि] मन्थे । खण्डते । चखण्डे ॥ [हेडृ, होडृ] अनादरे (तिरस्कार) हेडते । होडते । जिहेडे । जुहोडे ॥ [वाडृ] आप्लाव्ये (सब प्रकार चलना) वाडते । ववाडे ॥ [द्राडृ, ध्राडृ] विशरणे (मारना) द्राडते । दद्राडे । ध्राडते । दध्राडे ॥ [शाडृ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाडते । शशाडे ॥ इत्यट्टादय उदात्ता उदात्तेतः षट्त्रिंशत् समाप्ताः । ये अट्ट आदि ३६ धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः षडशीतिः । अब ८६ छयाशी धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥ [शौटृ] गर्वे (अभिमान) शौटति । शुशौट । शौटिता । शौटिष्यति । शौटिषति । शौटिषाति । शौटतु । अशौटत् । शौटेत् । शौट्यात् । अशौटीत् । अशौटिष्यत् ॥ [यौटृ] बन्धने

(बांधना) यौटति ॥ [म्लेट्ट, म्रेड्ट] उन्मादे (उन्मत्त होना) म्लेटति । मिम्लेट । म्रेडति । मिम्रेड ॥ [कटे] वर्षावरणयोः (वर्षना, ढांकना) इस धातु का एकार इत्संज्ञक होता है प्रयोजन आगे लिखा है । कटति । चकाट । चकटतुः । चकटुः । कटिता। कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटिषति । कटिषाति । कटति । कटाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । विकल्प करके वृद्धि (१४४) प्राप्त है इसलिये ॥१६१॥

१६२—ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥ अ० ॥ ७।२।५॥

हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णयन्त, श्वि और एकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं को वृद्धि न हो इडादि सिच् परे हो तो। अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [चटे] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में कटे धातु के अर्थ में चटे भी है । चटति । अचटीत् ॥ [अट, पट] गतौ । अटति । आट । आटतुः । आटुः । आटीत् । आटिष्यत् । पटति । पपाट । पेटतुः । पेटुः । पेटिथ । पेटथुः । पेट । पपाट । पपट । पेटिव । पेटिम । पटिता । पटिष्यति । पाटिषति । पाटिषाति । पटतु । अपटत् । पटेत् । पट्यात् । अपाटीत् । अपटीत् । अपटिष्यत् ॥[रट] परिभाषणे (बहुत बोलना) रटति । रराट । रेटतुः । रेटुः । अराटीत् । अरटीत् । अरटिष्यत् ॥ [लट] बाल्ये (बालकपन) लटति । ललाट । लेटतुः । लाटिषति । लाटिषाति । लटतु । अलटत् । लटेत् । लट्यात् । अलाटीत् । अलटीत् । अलटिष्यत् ॥ [शट] रुजाविशरणगत्यवसादनेषु (रोग, हिंसा, गति, पीड़ा) शटति । शशाट । शटिता । शटिष्यति । अशाटीत् । अशटीत् । अशटिष्यत् ॥ [वट] वेष्टने (लपेटना) वटति । ववाट । ववटतुः (१२८) । अवाटीत् । अवटीत् ॥ [किट, खिट] त्रासे (भय) केटति । खेटति । चिकेट । चिकिटतुः । चिखिटुः । अकेटीत् । अखेटीत् ॥ [शिट, षिट] अनादरे (तिरस्कार) शेटति । सेटति । सिषेट ॥ [जट, झट] सङ्घाते (समुदाय) जटति । जजाट जेटतुः । अजाटीत् । अजटीत् । जझाट । जझटतुः ॥ [भट] भृतौ (सेवा) भटति । बभाट ॥ [तट] उच्छ्राये (उंचाई) ॥ [खट] काङ्क्षायाम् (इच्छा) चखाट । अखाटीत् ॥ [णट] नृतौ (नाचना) नटति । ननाट । नेटतुः ॥ [पिट] शब्दसङ्घातयोः (शब्द, समूह) पेटति । पिपेट । अपेटीत् ॥ [हट] दीप्तौ च (प्रकाश) हटति । जहाट । अहाटीत् । अहटीत् ॥ [षट] अवयवे (विभाग करना) सटति । ससाट । सेटतुः । असाटीत् । असटीत् ॥ [लुट] विलोडने (विलोना) लोटति । लुलोट ॥ [चिट] परप्रेष्ये (दूसरे की सेवा करना) चेटति । चिचेट । चेटिता । चेटिष्यति । चेटिषति । चेटिषाति । चेटतु । अचेटत् ।

चेटेत् । चिट्यात् । अचेटीत् । अचेटिष्यत् ॥ [विट] शब्दे । बेटति । बिबेट ॥ [विट] आक्रोशे (कोशना) वेटति । विवेट ॥ [हिट] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में विट के स्थान में हिट धातु आक्रोश अर्थ में है । हेटति । जिहेट ॥ [इट, किट, कटी] गतौ । एटति । केटति । कटति । इयेट (१५३) चिकेट । चकाट । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । अकाटीत् । अकटीत् अकटिष्यत् ॥ [मडि] भूषायाम् (शोभा) मण्डति ममण्ड ॥ [कुडि] वैकल्ये (व्याकुलता) कुण्डति । चुकुण्ड ॥ [मुट, पुट] मर्दने (मलना) मोटति । पोटति । मुमोट । पुपोट । मोटिता । मोटिष्यति । मोटिषति । मोटिषाति । मोटतु । अमोटत् । मोटेत् । मुट्यात् । अमोटीत् । अमोटिष्यत् ॥ [चुडि] अल्पीभावे (थोड़ा होना) चुण्डति । चुचुण्ड ॥ [मुडि] खण्डने (काटना) मुण्डति । मुमुण्ड । मुण्डिता । मुण्डिष्यति । मुण्डिषति । मुण्डिषाति । मुण्डतु । अमुण्डत् । मुण्डेत् । मुण्ड्यात् । अमुण्डीत् । अमुण्डिष्यत् ॥ [पुडि] चेत्येके । किन्हीं ऋषियों के मत में पुडि धातु भी मुडि के समान खण्डन अर्थ में है ॥ [रुटि,लुटि] स्तेये (चोरी) रुण्टति । लुण्टति । रुरुण्ट । लुलुण्ट । लुण्टिता । लुण्टिष्यति । लुण्टिषति । लुण्टिषाति । लुण्टतु । अलुण्टत् । लुण्टेत् । लुण्ट्यात् । अलुण्टीत् । अलुण्टिष्यत् ॥ [रुठि,लुठि] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में रुठि लुठि धातु भी चोरी अर्थ में हैं । रुण्ठति । लुण्ठति । रुरुण्ठ । लुलुण्ठ ॥ [स्फुटिर्] विशरणे (मारना) स्फोटति । पुस्फोट । स्फोटिता । स्फोटिष्यति । स्फोटिषति । स्फोटिषाति । स्फोटतु । अस्फोटत् । स्फोटेत् । स्फुट्यात् । अस्फुटत् । अस्फोटीत् (१३८) । अस्फोटिष्यत् ॥ [पठ] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) पठति । पपाठ । पेठतुः पेठुः । पेठिथ । पठिता । पठिष्यति । पाठिषति । पाठिषाति । पठिषति । पठिषाति । पठतु । अपठत् । पठेत् । पठ्यात् । अपाठीत् । अपठीत् । अपठिष्यत् ॥ [वठ] स्थौल्ये (मोटा होना) वठति । ववाठ । ववठतुः । ववठुः । वठिता । वठिष्यति । वाठिषति । वाठिषाति । वठतु । अवठत् । वठेत् । वठ्यात् । अवाठीत् । अवठीत् । अवठिष्यत् ॥ [मठ] मदनिवासयोः (अभिमान, वसना) मठति । ममाठ । मेठतुः । अमाठीत् । अमठीत् ॥ [कठ] कृच्छ्रजीवने (दुःख से जीवना) कठति । चकाठ । चकठतुः । अकाठीत् । अकठीत् ॥

तिष्टेपाते ॥ तिष्टेपिरे । [थिपृ,थेपृ] इत्यन्ये । थेपते । तिथिपे । तिथेपे ॥ [तेपृ] कम्पने (कांपना) [ग्लेपृ] दैन्ये (दीनता) ग्लेपते । जिग्लेपे [टुवेपृ] कम्पने । टु की इत्संज्ञा । वेपते । विवेपे । वेपिता । वेपिष्यते । वेपिषतै । वेपिषातै । वेपताम् । अवेपत । वेपेत । वेपिषीष्ट । अवेपिष्ट । अवेपिष्यत ॥ [केपृ,गेपृ,ग्लेपृ] च। यहां चकार से कम्पन अर्थ का समुच्चय होता है । केपते । गेपते । ग्लेपते ॥ [मेपृ, रेपृ, लेपृ] गतौ । मेपते । रेपते । लेपते ॥ [हेपृ, धेपृ] च । गति अर्थ में हैं । हेपते । जिहेपे। धेपते । दिधेपे । धेपिता । धेपिष्यते । धेपिषतै । धेपिषातै । धेपताम् । अधेपत । धेपेत । धेपिषीष्ट । अधेपिष्ट । अधेपिष्यत ॥ (त्रपूष्) लज्जायाम् । त्रपते । त्रेपेते । त्रपन्ते ॥ १६३ ॥

१६४–तॄफलभजत्रपश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२२ ॥

तॄ, फल, भज और त्रप धातुओं के अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होवे । त्रप्+त्रप्+एश् = त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे । त्रेपिषे । त्रेपाथे । त्रेपिध्वे । त्रेपे । त्रेपिवहे । त्रेपिमहे । इस धातु का षकार इत् जाता है उस का तो प्रयोजन कृदन्त में आवेगा और ऊकार इत् जाने से ऊदित् होकर (१४०) सूत्र से वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प से इडागम होता है । त्रपिता। त्रप्ता । त्रप्तारौ । त्रप्तारः । त्रपिष्यते । त्रप्स्यते । त्रापिषतै । त्रापिषातै । त्रपिषतै । त्रपिषातै । त्रापिषते । त्रापिषाते । त्रपिषते। त्रपिषाते। त्राप्सतै। त्राप्सातै। त्राप्सते। त्राप्साते । त्रप्सतै। त्रप्सातै । त्रप्सते।त्रप्साते। त्रपतै। त्रपातै । त्रपते। त्रपाते ।इसी प्रकार बीस२प्रयोग आतां आदि सब प्रत्ययों में जानो । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रापिषीष्ट । त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट। अत्रप्त (१४२)। अत्रप्साताम् । अत्रप्सत । अत्रपिष्यत । अत्रप्स्यत [कपि] चलने (चलना) कम्पते । चकम्पे । कम्पिता । कम्पिष्यते। कम्पिषतै । कम्पिषातै । कम्पताम् । अकम्पत । कम्पेत । कम्पिषीष्ट । अकम्पिष्ट । अकम्पिष्यत [रबि, लबि, अबि] शब्दे । रम्बते । ररम्बे । लम्बते । ललम्बे । अम्बते । आनम्बे ॥ [लबि) अवस्रंसने च (लटकना) चकार से शब्द [कबृ] वर्णे (रंग) कबते । चकबे । कबिता । काबिष्यते । काबिषतै । काबिषातै । कबताम् । अकबत । कबेत । कबिषीष्ट । अकबिष्ट । अकबिष्यत [क्लीबृ] अधार्ष्ट्ये (भोलापन) क्लीबते । चिक्लीबे ॥ [क्षीबृ] मदे (अहङ्कार) क्षीबते । चिक्षीबे ॥ [शीभृ] कत्थने (कहना)

शीभते । शिशीभे ॥ [चीभृ] च । यहां चकार से कत्थन अर्थ का समुच्चय होता है [रेभृ] शब्दे । रेभते रिरेभे ॥ [अभि, रभि] इत्येके । अम्भते । आनम्भे । रम्भते । ररम्भे ॥ [ष्टभि, स्कभि,] प्रतिबन्धे (बांधना) स्तम्भते । तस्तम्भे । स्तम्भिता । स्तम्भिष्यते । स्तम्भिषतै । स्तम्भिषातै । स्तम्भताम् । अस्तम्भत । स्तम्भेत । स्तम्भिषीष्ट । अस्तम्भिष्ट । अस्तम्भिष्यत । स्कम्भते । चस्कम्भे । स्तम्भ धातु में इतना विशेष है कि जो उद् उपसर्ग इस के पूर्व हो तो उस के सकार को पूर्वसवर्ण (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) सूत्रसे तकार हो जाता है । उत्तम्भते । उत्तम्भेते । इत्यादि । [जभी, जृभि] गात्रविनामे (शरीर का मरोरना) जभी धातु का दीर्घ ईकार इत् जाता है ॥ १६४ ॥

१६५–रधिजभोरचि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो रध और जभ धातु को नुम् का आगम हो । जम्भते । जजम्भे । जम्भिता । जम्भिष्यते । जम्भिषतै । जम्भिषातै । जम्भताम् । अजम्भत । जम्भेत । जम्भिषीष्ट । अजम्भिष्ट । अजम्भिष्यत । जृम्भते । जजृम्भे । [शल्भ] कत्थने । शल्भते । शशल्भे । [वल्भ] भोजने । वल्भते । ववल्भे । [गल्भ] धार्ष्ट्ये (ढीठता) गल्भते । जगल्भे । [स्रम्भु) प्रमादे (प्रमत्तपन) स्रम्भते । सस्रम्भे । यह स्रम्भ धातु तालव्यादि भी है । श्रम्भते [ष्टुभु] स्तम्भे (रोकना) स्तोभते । तुष्टुभे । स्तोभिता । स्तोभिष्यते । स्तोभिषतै । स्तोभिषातै । स्तोभताम् । अस्तोभत । स्तोभेत । स्तोभिषीष्ट । अस्तोभिष्ट । अस्तोभिष्यत । इति तिपादय उदात्ता अनुदात्तेतस्तिपिवर्जमात्मनेभाषा अष्टत्रिंशत् समाप्ताः । ये पवर्गान्तों में तिप आदि ३८ धातु समाप्त हुए ॥

अथ द्वाचत्वारिंशत्परस्मैपदिनः । अब बयालीस ४२ धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥

[गुपू] रक्षणे (रक्षा करना) ॥ १६५ ॥

१६६–गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ अ० ॥ ३ । १ । २८ ॥

गुपू, धूप, विच्छ, पण और पन धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय हो । यहां ऊदित् गुपू धातु से आय प्रत्यय होकर । गुपू–आय । यहां आय प्रत्ययकी (४६) से आर्द्धधातुक संज्ञा और (५१) से गुण होके । गोपाय ॥ १६६ ॥

१६७–सनाद्यन्ता धातवः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३२ ॥

सन् आदि प्रत्यय जिन के अन्त में हों ऐसे प्रकृति प्रत्यय समुदायों की धातु-संज्ञा हो । सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ का क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्,णिङ्, ये सब सनादि प्रत्यय कहाते हैं । यहां गोपाय की धातुसंज्ञा होकर इस से लट् आदि लकारों की उत्पत्तिऔर भू आदि धातुओं के समान इस को भी धातु संज्ञा के सब कार्य होते हैं । गोपाय+शप्+तिप् = गोपायति । गोपायतः । गोपायन्ति । गोपायसि । गोपायथः । गोपायथ । गोपायामि । गोपायावः । गोपायामः। यहां शप् के अकार केसाथ गोपाय के अकार को पररूप एकादेश हो जाता है ॥१६७॥

१६८–आयादय आर्द्धधातुके वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३१ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में गोपाय आदि धातुओं से आय आदि प्रत्यय विकल्प करके हों । गोपाय–लिट् । यहां ॥ १६८ ॥

१६९–कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३५ ॥

लिट् लकार परे हो तो कास धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय हो, वेदविषय में न हो ॥ १६९ ॥

१७०–वा०–कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

(कास्प्र०) इस सूत्र पर वार्तिककार प्रत्यय ग्रहण के स्थान में अनेकाच् ग्रहण करते हैं अर्थात् (कासनेकाच आममंत्रे लिटि) ऐसा सूत्र करना चाहिये.इस का प्रयोजन आगे आवेगा । अनेकाच् कहने से प्रत्ययान्त धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है । यहां गोपाय प्रत्ययान्त धातु से आम् प्रत्यय होकर। गोपाय–आम्–लिट्। यहां ॥ १७० ॥

१७१–आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४६ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १७१ ॥

१७२–अतो लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४८ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हो तो अदन्त अङ्ग का लोप हो यहां गोपाय के अन्त्य अकार का लोप होकर । गोपाय+आम्+कृ+कृ+णल्=गोपायाञ्चकार (१०२)

इत्यादि सूत्र लगते हैं । गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । और जिस पक्ष में (१६८) सूत्र से आय प्रत्यय नहीं होता वहां । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक में (१४०) सूत्र से विकल्प करके इडागम होता है । जुगोपिथ । जुगोप्थ । जुगुपथुः । जुगुप । जुगोप । जुगुपिव । जुगुप्व । जुगुपिम । जुगुप्म । (लुट्) गोपायिता । गोपायितारौ । गोपायितारः । आय प्रत्यय के अभावपक्ष में । गोपिता । गोपितारौ । गोपितारः । अनिट् पक्ष में । गोप्ता । गोप्तारौ । गोप्तारः । गोपायिष्यति । गोपिष्यति । गोप्स्यति । गोपायिषति । गोपायिषाति । गोपिषति । गोपिषाति । गोप्सति ।गोप्साति । गोपायति । गोपायाति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात् (१७२)।गोपाय्यास्ताम् । गोपाय्यासुः । गुप्यात् । अगोपायीत्।अगोपीत्। अगौप्सीत्। अगौप्ताम् (१४२)।अगौप्सुः।अगौप्सीः ।अगौप्तम् ।अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्स्म ।'अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् ॥[धूप] सन्तापे (दुःखहोना) धूपायति । धूपायतः । धूपायाञ्चकार । धूपायाम्बभूव । धूपायामास (१६९)इत्यादि सूत्र लगते हैं । दुधूप (१६८) दुधूपतुः । धूपायिता । धूपिता । धूपायिष्यति । धूपिष्यति । धूपायिषति । धूपायिषाति । धूपिषति । धूपिषाति । धूपायतु । अधूपायत् । धूपायेत् । धूपाय्यात् । धूप्यात् । अधूपायीत् । अधूपीत् । अधूपायिष्यत् । अधूपिष्यत् [जप, जल्प] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) जपति । जल्पति । जजाप । जेपतुः । जेपुः । जपिता । जपिष्यति । जापिषति । जापिषाति । जपतु । अजपत् । जपेत् । जप्यात् । अजापीत् । अजपीत् । अजपिष्यत् ॥ [जप] मानसे च(विचार पूर्वक मन में जपना) [चप] सान्त्वने (शान्त होना) चपति ॥ [षप] समवाये (सम्बन्ध होना) सपति [रप, लप] व्यक्तायां वाचि । रपति । लपति । प्रलपति ॥ [चुप] मन्दायां गतौ (धीरे २ चलना) चोपति । चुचोप । चोपिता । चोपिष्यति । चोपिषति । चोपिषाति । चोपतु । अचोपत् । चोपेत् । चुप्यात् । अचोपीत् । अचोपिष्यत् । [तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुम्प, तुफ, तुम्फ, त्रुफ, त्रुम्फ,] हिंसार्थाः । तोपति। तुतोप । तोपिता । तोपिष्यति । तोपिषति । तोपिषाति । तोपतु । अतोपत् । तोपेत् । तुप्यात् । अतोपीत् । अतोपिष्यत् । तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः । यहां संयोगान्त तुम्प धातु से परे लिट् (१३७) से कित्वत् नहीं होता इस से नलोप भी नहीं हुआ और प्र उपसर्ग से परे (प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि) यह पारस्करप्रभृति गण का सूत्र है । गौ कर्त्ता हो तो प्र उपसर्ग से परे तुम्प धातु को सुट् का आगम हो जाता है । प्रस्तु-

म्पाति । और गणसूत्र में शितप् का निर्देश करने से । प्रतोतुम्पीति । यहां यङ्लुक् में सुट् नहीं होता । तुप्यात् । त्रुप्यात् । तुफ्यात् । त्रुफ्यात् (१३९) । अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् ॥ [पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, षर्ब, चर्ब] गतौ [चर्ब] अदने च । चर्ब धातु (खाने) और गति दोनों अर्थ में है । पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति । अर्बति । आनर्ब । अर्बिता । अर्बिष्यति । अर्बिषति। अर्बिषाति । अर्बतु । आर्बत् । अर्बेत् । अर्ब्यात् । आर्बीत् । आर्बिष्यत् । पर्बति । लर्बति । बर्बति । मर्बति । कर्बति । खर्बति। गर्बति । शर्बति । सर्बति । चर्बति । चचर्ब । चर्बिता । चर्बिष्यति । चर्बिषति । चर्बिषाति । चर्बतु । अचर्बत् । चर्बेत् । चर्ब्यात् । अचर्बीत् । अचर्बिष्यत् ॥ [कुबि] आच्छादने (ढांकना) कुम्बति । चुकुम्ब ॥ [लुबि, तुबि] अर्दने (गति और मांगना) लुम्बति । तुम्बति । लुलुम्ब । तुतुम्ब ॥ [चुबि] वक्त्रसंयोगे । चुम्बति । चुचुम्ब ॥ [षृभु, षृम्भु] हिंसार्थौ । सर्भति । ससर्भ । सर्भिता। सर्भिष्यति । सर्भिषति । सार्भिषाति । सर्भतु । असर्भत् । सर्भेत् । सृभ्यात् । असर्भीत् । असार्भिष्यत् । सृम्भति । ससृम्भ । सृभ्यात् ॥ [षिभु, षिम्भु] इत्येके । किन्हीं लोगों के मत में ये दोनों धातु भी हिंसार्थक हैं । सेभति । सिम्भति । सिभ्यात् ॥ [शुभ शुम्भ] भाषणे (बोलना) भासने, इत्येके (प्रकाश) हिंसायामित्यन्ये * । शोभति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति । शोभिषति । शोभिषाति । शोभतु । अशोभत् । शोभेत् । शुभ्यात् । अशोभीत् । अशोभिष्यत् । शुम्भति । शुशुम्भ । शुभ्यात् ॥ इति गुपादय उदात्ता उदात्तेत एकचत्वारिंशत्समाप्ताः । ये गुप आदि ४१ इकतालीस धातु समाप्त हुए ॥

अथानुनासिकान्ता द्विचत्वारिंशत् । तत्रानुदात्तेतो दश । अब अनुनासिकान्त ४२ बयालीस धातु कहते हैं उन में प्रथम घिणि आदि दश आत्मनेपदी हैं ॥ [घिणि, घुणि, घृणि] ग्रहणे (ग्रहण करना) घिण्णते । यहां नुम् का आगम होकर (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से नुम् के (तवर्ग) नकार को (टवर्ग) णकार हो जाता है । घिण्णेते । घिण्णन्ते । जिघिण्णे । घिण्णिता । घिण्णिष्यते । घिण्णिषतै । घिण्णिषातै । घिण्णताम् । अघिण्णत । घिण्णेत । घिण्णिषीष्ट । अघिण्णिष्ट । अघिण्णिष्यत । घुण्णते । घृण्णते । [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (विचरना) घोणते । जुघुणे । घोणिता । घोणिष्यते । घोणिषतै ।

* (इत्येके) और (इत्यन्ये) इत्यादि शब्द धातुपाठ में बहुधा आया करते हैं उन का अर्थ यहां बार लिख दिया है अब आगे बार २ नहीं लिखेंगे ॥

घोणिषातै । घोणताम् । अघोणत । घोणेत । घोणिषीष्ट । अघोणिष्ट । अघोणिष्यत । घूर्णते । जुघूर्णे । [पण] व्यवहारे स्तुतौ च (लेना, देना और प्रशंसा) [पन] च । यहां चकार से स्तुति अर्थ का हीसम्बन्ध होता है व्यवहार का नहीं इसीलिये पन धातु पृथक् पढ़ा है नहीं तो इकट्ठा ही पढ़ते । पण तथा पन धातु अनुदात्तेत् हैं सो पन धातु से स्तुति अर्थ में ही आय प्रत्यय (१६६) सूत्र से होता है इस के साहचर्य से पण धातु से भी आय प्रत्यय स्तुति अर्थ में ही होता है और व्यवहार अर्थ में इस को आत्मनेपद होने का अवकाश मिलने से आयप्रत्ययान्त पण धातु से आत्मनेपद नहीं होता । पण+आय+शप्+तिप्=पणायति । पणायतः । पणायन्ति । पणायाञ्चकार । पणायाम्बभूव । पणायामास (१६८) पेणे । पेणाते । पेणिरे । पणायितासि । पणितासे । पणायिष्यति । पणिष्यते । पणायतु । अपणायत् । पणायेत् । पणाय्यात् । पणिषीष्ट । अपणायीत् । अपणिष्ट । अपणायिष्यत् । अपणिष्यत । व्यवहार अर्थ में । पणते । पणेते । पणन्ते । पन धातु स्तुति अर्थ में ही है । पनायति । पनायाञ्चकार । पनायाम्बभूव । पनायामास । पेने । पेनाते । पेनिरे । पनायितासि । पनितासे । पनायिष्यति । पनिष्यते । पनायिषति । पनायिषाति । पानिषतै । पानिषातै । पनायतु । अपनायत् । पनायेत् । पनाय्यात् । पनिषीष्ट । अपनायीत् । अपनिष्ट । अपनायिष्यत् । अपनिष्यत । [भाम] क्रोधे । भामते । बभामे । भामितासे । भामिष्यते । भामिषतै । भामिषातै । भामताम् । अभामत । भामेत । भामिषीष्ट । अभामिष्ट । अभामिष्यत । [क्षमूष्] सहने (सहना) क्षमते । यह भी धातु ऊदित् है । चक्षमे । चक्षमाते । चक्षमिरे । चक्षमिषे । चक्षंसे (१४०) से इट् का आगम विकल्प करके होता है । चक्षमाथे । चक्षमिध्वे । चक्षन्ध्वे । चक्षमे ॥ १७२॥

१७३–म्वोश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६५ ॥

म और व परे हों तो मकारान्त धातु के मकार को नकारादेश होवे । यहां व, म के परे क्षम् धातु के मकार को न होकर मूर्द्धन्य षकारसे परे णत्व हो जाता है । चक्षण्वहे । चक्षमिवहे । चक्षण्महे । चक्षमिमहे । क्षमिता । क्षन्ता । क्षन्तारौ । क्षन्तारः । क्षन्तासे । क्षमिष्यते । क्षंस्यते । क्षामिषतै । क्षामिषातै । क्षमिषतै । क्षमिषातै । क्षामिषते । क्षामिषाते । क्षमिषते । क्षमिषाते । क्षांसतै । क्षांसातै । क्षांसते । क्षांसाते । क्षंसतै । क्षंसातै । क्षंसते । क्षंसाते । क्षमतै । क्षमातै । क्षमते । क्षमाते । इसी प्रकार बीस २ प्रयोग (आताम्) आदि सब प्रत्ययों में जानो । क्षमताम् । अक्षमत । क्षमेत ।

क्षमिषीष्ट । क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट ।अक्षंस्त । अक्षमिष्यत । अक्षंस्यत । यहां सर्वत्र अनिट् पक्ष में क्षम धातु के मकारको अनुस्वार हो जाता है ॥ [कमु] कान्तौ (इच्छा) ॥१७३॥

१७४–कमेर्णिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३० ॥

कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में । पश्चात् (१६७) से धातुसंज्ञा और णिङ् प्रत्यय के परे (१२६) से कम के अकार को वृद्धि होके कामि धातु से णिङ् प्रत्यय के ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं । कम्+णिङ्+शप्+त=कामयते । कामयेते । कामयन्ते । कामि–आम् –लिट् ॥ १७४ ॥

१७५–अयामन्तालवाय्येत्न्विष्णुषु ॥ अ०॥ ६ । ४ । ५५ ॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे हों तो णि के स्थान में अय् आदेश हो । (१७७) सूत्र से लोप पाया था सो न हो अर्थात् लोप का अपवाद यह सूत्र है । कामयाञ्चक्रे (१६९) कामयाञ्चक्राते । कामयाञ्चक्रिरे । कामयाम्बभूव । कामयामास (१६८) सूत्र से णिङ् प्रत्यय के अभाव पक्ष में । चकमे । चकमाते । चकमिरे । कामयिता । कामयितारौ । कामयितारः । कामयितासे । कमितासे । कामयिष्यते । कमिष्यते । कामयिषतै । कामयिषातै । कामिषतै । कामिषातै । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट । कमिषीष्ट । कामि–च्लि—लुङ् । यहां च्लि प्रत्यय के स्थान में सिच् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद ॥ १७५ ॥

१७६–णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४८ ॥

णयन्त,श्रि, द्रु और स्रु धातुओं से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में चङ् आदेश हो कर्त्ता में लुङ् परे हो तो । अट्–काम्–इ–चङ्–त । इस अवस्था में ॥ १७६ ॥

१७७–णेरनिटि ॥ अ०॥ ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो णि का लोप हो जावे । इसी विषय में (१५६) सूत्र से यण् आदेश परत्व से प्राप्त है ॥ १७७ ॥

१७८–वा०–णयल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन भवतः ॥

णिलोप और (१७२) सूत्र से अकार का लोप ये दोनों कार्य इयङ्, यण्,गुण,

वृद्धि और दीर्घ से पूर्वविप्रतिषेध करके हो जाते हैं । णिलोप को (कार्यते) यहां अवकाश है क्योंकि कारि धातु से यक् प्रत्यय के परे भावकर्मप्रक्रिया में णि का लोप हो जाता है और (श्रियौ) यहां इयङ् आदेश को (विन्यतुः । विन्युः) यहां यण् आदेश को (चेता, स्तोता) यहां गुण को (सखायौ) यहां वृद्धि को और (चीयते, स्तूयते) यहां दीर्घादेश को अवकाश है और (णेरनिटि) सूत्र से ये सब इयङ् आदि कार्य परे हैं । इन सब कार्य्यों का और णिलोप का जहां एक प्रयोग में आकर झगड़ा पड़ता है वहां परविप्रतिषेध मानने से इयङ् आदि कार्य प्राप्त हैं वार्त्तिककार के प्रमाण से पूर्वविप्रतिषेध मानके णिलोप हो जाता है इयङ् आदि नहीं होते । जैसे । अट्+तन्त्रि+चङ्+तिप् = अततन्त्रत् । यहां (१५६) सूत्रसे इयङ् आदेश प्राप्त है उसको बाध के णिलोप होता है । अट्+आटि+चङ्+तिप् = आटिटत् । यहां (१५८) से यणादेश प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप हो जाता है । कारि+युच्+टाप् = कारणा । यहां (२१) सूत्र से परत्व से गुण पाता है उस का अपवाद होकर णिलोप होता है । कारि+ण्वुल्+सु = कारकः । यहां (६०) सूत्र से वृद्धि प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप हो जाता है और । कारि+यक्+त = कार्यते । यहां (१६०) सूत्र से परत्व से दीर्घ प्राप्त है उस से भी पूर्वविप्रतिषेध कर के णिलोप हो जावे इसलिये (णयल्लोपावि०) यह वार्त्तिक है । और (कामि—चङ्—त) यहां तो (१५६) सूत्र से यणादेश परत्व से प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । फिर अट्—काम्—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १७८ ॥

१७९—णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १ ॥

चङ्परक णि के परे जिस की अङ्ग संज्ञा है उसकी उपधा को ह्रस्वादेश हो जावे । यहां (काम्) को ह्रस्व होकर । अट्—कम्—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १७९ ॥

१८०—चङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ११ ॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो जावे । अट्—कम्—कम्—चङ्—त । यहां (कम्) भाग को द्वित्व हुआ ॥ १८० ॥

१८१—सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९३ ॥

धातु का लघु अक्षर जिस से परे हो ऐसा जो अभ्यास उस को जिस चङ् के परे

अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परे हो तो सन्वत् कार्य हो अर्थात् सन् प्रत्यय के परे जो कार्य होता है सो अभ्यास को भी हो जावे । चङ् प्रत्यय के परे जो णि का लोप होता है वह भी अक्-लोप है परन्तु इसी सूत्र में चङ् जिस से परे हो ऐसे णि की अपेक्षा होने से णिलोप से अन्य अग्लोप समझा जाता है और णिलोप को स्थानिवत् मानके इस सूत्र के अर्थ की प्रवृत्ति होती है ॥१८१॥

१८२—सन्यतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७९ ॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास के अकार को इकार आदेश हो । अट्—किम्—कम्—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १८२ ॥

१८३—दीर्घो लघोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९४ ॥

धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो अनग्लोपी चङ्परक णि परे हो तो । यहां (कि) को दीर्घ और (१०७) से ककार को चकार तथा (३८) से अभ्यास के हल् मकार का लोप और चङ् में (च्,ङ्) का लोप होकर । अट्+ची+कम्+अ+त=अचीकमत । अचीकमेताम् । अचीकमन्त । अचीकमथाः । अचीकमेथाम् । अचीकमध्वम् । अचीकमे । अचीकमावहि । अचीकमामहि । और जिस पक्ष में आयादि णिङ् प्रत्यय (१६८) से नहीं होता वहां ॥ १८३ ॥

१८४—वा०—कमेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ६ । १ । ४८ ॥

केवल कम धातु से परे जो च्लि उस के स्थान में चङ् आदेश होवे । अट्+कम्+कम्+चङ्+त = अचकमत (१८०) अचकमेताम् । अचकमन्त । अचकमथाः । अचकमेथाम् । अचकमध्वम् । अचकमे । अचकमावहि । अचकमामहि । इति घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा दश समाप्ताः । ये घिणि आदि दश धातु समाप्त हुए॥

अथ द्वात्रिंशत् परस्मैपदिनः । अब ३२ धातु अनुनासिकान्त परस्मैपदी कहते हैं [अण,रण,वण,भण,मण,कण,क्वण,व्रण,भ्रण,ध्वण] शब्दार्थाः । अणति । रणति । वणति । आण । आणतुः । आणुः । अणिता । अणिष्यति। आणिषति । आणिषाति । अणतु । आणत् । अणेत् । अण्यात् । आणीत् । आणिष्यत् । ववाण । ववणतुः (१२८) ववणुः । वणिता । वणिष्यति । वाणिषति । वाणिषाति । वणतु । अवणत् । वणत् । वण्यात् । अवाणीत् । अवणीत् । अवणिष्यत् । भणति । बभाण । बभणतुः । अभा-

णीत् । अभणीत् । मणति । कणति । कणति । व्रणति । भ्रणति । ध्वणति ॥ [धण] इत्येके । धणति । दधाण । दधणतुः । धणिता । धणिष्यति । धाणिषति । धाणिषाति । धणतु । अधणत् । धणेत् । धण्यात् । अधाणीत् । अधणीत् । अधाणिष्यत् ॥ [ओणृ] अपनयने (हटाना) ओणति । ओणाञ्चकार । ओणाम्बभूव । ओणामास । ओणिता । ओणिष्यति । ओणिषति । ओणिषाति । ओणतु । औणत् । ओणेत् । ओण्यात् । औणीत् । औणिष्यत् ॥ [शोणृ] वर्णगत्योः (रंग और गति) शोणति । शुशोण ॥ [श्रोणृ] सङ्घाते (समुदाय) श्रोणति । शुश्रोण ॥ [श्लोणृ] च (सङ्घात अर्थ में) श्लोणति । शुश्लोण । [पैणृ] गतिप्रेरणश्लेषणेषु (गति, प्रेरणा और मिलाना) पैणति । पिपैण । पिपैणतुः । पिपैणु । पैणिता । पैणिष्यति । पैणिषति । पैणिषाति । पैणतु । अपैणत् । पैणेत् । पैण्यात् । अपैणीत् । अपैणिष्यत् ॥ [ध्रण,बण] शब्दे । यहां ध्रन धातु उपदेश में नान्त है पीछे रेफ से परे णत्व हो जाता है । ध्रणति । बणति । बबाण । बेणतुः ॥ [कनी] दीप्तिकान्तिगतिषु (प्रकाश, इच्छा और गति) कनति । चकान । चकनतु । कनिता । कनिष्यति । कानिषति । कानिषात । कनतु । अकनत् । कनेत् । कन्यात् । अकानीत् । अकनीत् । अकानिष्यत् । [ष्टन, वन] शब्दे । स्तनति । तस्तान । तस्तनतु । स्तनिता । स्तनिष्यति । स्तानिषति । स्तानिषाति । स्तनतु । अस्तनत् । स्तनेत् । स्तन्यात् । अस्तानीत् । अस्तनीत् । अस्तानिष्यत् । वनति ॥ [वन,षण] सम्भक्तौ (भक्ति) वन धातु का दूसरा अर्थ होने से फिर पढ़ा है । सनति । ससान । सेनतुः । सेनुः । यह बात सब धातुओं में समझना चाहिये कि जहां लिट् लकार को मानके अभ्यास को कुछ आदेश होता है वहीं (१२५) सूत्र से (अनादेशादि) निषेध लगता है कि जैसे । बभणतुः । बभणुः । और जहां धातु के आदि षकार को स और णकार को न हो जाता है वहां निषेध नहीं लगता इसी से । सेनतुः । सेनुः । यहां एत्वाभ्यासलोप (१२५) से होता है । सनिता । सनिष्यति । सानिषति । सानिषाति । सनतु । असनत् । सनेत् ॥ १८४ ॥

१८५-ये विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४३ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जन, सन और खन धातुओं को आकार आदेश विकल्प करके हो । अलोन्त्य परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् नकार के स्थान में होता है, (८५) से यासुट् कित् होता है । सन्+यासुट्+सुट्+तिप्=

सायात् । सन्यात् । असानीत् । असनीत् । असनिष्यत् । [अम] गत्यादिषु । गति आदि (गति,शब्द और सम्भक्ति) अर्थों में अम् धातु है । अमति । आम । आमतुः । आमुः । अमिता । अमिष्यति । आमिषति । आमिषाति । अमतु । आमत् । अमेत् । अम्यात् । आमीत् । आमिष्यत् । [द्रम् हम्म, मीमृ] गतौ । द्रमति । दद्राम । हम्मति । जहम्म । मीमति । मिमीम । द्रम धातु मकारान्त अकारोपध है । इस में विकल्प से वृद्धि (१४४) से प्राप्त है सो (१६२) सूत्र से नहीं होती । अद्रमीत् । अद्रमिष्यत् । [मीमृ] शब्दे च । यहां चकार गति और शब्द दोनों अर्थ का बोध होने के लिये है [चमु, छमु, जमु, झमु] अदने (खाना) ॥ १८५ ॥

१८६–ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७५ ॥

ष्ठिवु,क्लमु और चमु धातुओं के अच् को दीर्घ आदेश हो शित् प्रत्यय परे हों तो । इस सूत्र से इन धातुओं को सामान्य कर के दीर्घ प्राप्त है ॥ १८६ ॥

१८७–वा०–दीर्घत्वमाङि चम इति वक्तव्यम् ॥

आङ्पूर्वक ही चम धातु को दीर्घ हो सर्वत्र नहीं । आचामति । आचामतः । आचामन्ति । आङ् का नियम इसलिये किया है कि । उच्चमति । विचमति । यहां दीर्घ न हो । चचाम । चेमतः । चेमुः । आचचाम । आचेमतुः । आचेमुः । चामिता । चामिष्यति । चामिषति । चामिषाति । चमतु । आचामतु । अचमत् । आचामत् । चमेत् । आचामेत् । चम्यात् । आचमीत् (१६२) आचामिष्यत् । छमति । चच्छाम । चच्छमतुः । अच्छमीत् । जमति । जजाम । जेमतुः । जेमुः । जमिता । जमिष्यति । जामिषति । जामिषाति । जमतु । अजमत् । जमेत् । जम्यात् । अजमीत् । झमति । जझाम । जझमतुः [जिम] इत्येके । जेमति । जिजेम [क्रमु] पादविक्षेपे (पग फेंकना) ॥१८७॥

१८८–वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७० ॥

भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि और लष धातुओं से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । और पक्ष में शप् हो जाता है । इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है क्योंकि इन में जो धातु दिवादि गण के हैं उन से तो श्यन् प्रत्यय नित्य ही प्राप्त है और अन्य गणों के धातुओं से अप्राप्त है और श्यन्

प्रत्यय तथा अन्य सब विकरण प्रत्यय (स्य, तास्, सिप्) आदि शप् प्रत्यय के अपवाद हैं ॥ १८८ ॥

१८९–क्रमः परस्मैपदेषु ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

परस्मैपद संज्ञक शित् प्रत्यय परे हों तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे । क्रम्+श्यन्+तिप्=क्राम्यति । क्रम्+शप्+तिप्=क्रामति । और परस्मैपद का ग्रहण इसलिये है कि।आक्रमते आदित्यः । यहां पदव्यवस्था से आत्मनेपद में दीर्घ न होवे । चक्राम । चक्रमतुः । चक्रमुः । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्रामिषति । क्रामिषाति । क्राम्यतु । क्रामतु । अक्राम्यत् । अक्रामत् । क्रामेत् । क्राम्येत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् ॥ इत्यणादय उदात्ता उदात्तेतो द्वात्रिंशत् परस्मैभाषाः समाप्ताः । ये ३२ बत्तीस धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

अथ यवर्गीयान्ता अष्टाविंशत्यधिकं शतम् । अब एकसौ अट्ठाईस १२८ धातु यवर्गीयान्त कहते हैं [अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय] गतौ । अय्+शप्+त=अयते ॥ १८९ ॥

१९०–दयायासश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ॥

दय, अय और आस धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् लकार परे हो तो । अय्+आम्+कृ+कृ+एश्=अयाञ्चक्रे । अयाञ्चक्राते । अयाञ्चक्रिरे । अयितासे । अयिष्यते । आयिषतै । आयिषातै । अयताम् । आयत । अयेत ॥ १९० ॥

१९१–विभाषेटः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७९ ॥

इण् से परे जो इट् उस से परे जो सीध्वं, लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो जावे । धकार के स्थान में अन्तरतम आदेश ढकार हो जाता है । अयिषीष्ट । अयिषीयास्ताम् । अयिषीरन् । अयिषीष्ठाः । आयिषीयास्थाम् । अयिषीढ्वम् । अयिषीध्वम् । अयिषीय । अयिषीवाहि । अयिषीमाहि । आयिष्ट । आयिषाताम् । आयिषत । आयिष्ठाः । आयिषाथाम् । आयिढ्वम् । आयिध्वम् । आयिषि । आयिष्वहि । आयिष्महि । आयिष्यत ॥ १९१ ॥

१९२–उपसर्गस्यायतौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । १९ ॥

अय धातु के परे पूर्व जो उपसर्ग उस के रेफ को लकार आदेश हो । जैसे प्र+

श्रयते । श्लायते । पलायते । पलायाञ्चक्रे । निस् और दुस् उपसर्गों के सकार को रुत्व त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध मानने से । निरयते । दुरयते । प्रयोग होते हैं । और जहां निर्, दुर् उपसर्ग हों वहां । निलयते । दुलयते । रूप बनते हैं । वयते । ववये (१२८) वयिता । वयिष्यते । वायिषतै । वायिषातै । वयताम् । अवयत । वयेत । वयिषीष्ट । वयिषीढ्म् । वयिषीध्वम् । अवयिढ्वम् । अवयिध्वम् । अवयिष्यत । पयते । पेये । पेयाते । पेयिरे । पयिषीढ्वम् । पयिषीध्वम् । अपयिढ्वम् । अपयिध्वम् । इसी प्रकार मय आदि के जानो [णय] रक्षणे च । णय धातु के गति और रक्षा दोनों अर्थ हैं । नयते । नेये । नयिता । नायिषतै । नायिषातै । नयताम् । अनयत । नयेत । नयिषीष्ट । नयिषीढ्वम् । नयिषीध्वम् । अनयिढ्वम् । अनयिध्वम् । अनयिष्यत । [दय] दानगतिरक्षणहिंसादानेषु (देना, गति, रक्षा, मारना और लेना) दयते । दयाञ्चक्रे (१९०) दयिता । दयिष्यते । [रय] गतौ । रयते । रेये [ऊयी] तन्तुसन्ताने (सूत का फैलाना) ऊयते । ऊयाञ्चक्रे । [पूयी] विशरणे दुर्गन्धे च (मारना और दुर्गन्ध करना) पूयते । पुपूये । पूयिता । [क्नूयी] शब्दे उन्दे च (शब्द और गीलापन) क्नूयते । चुक्नूये । [क्ष्मायी] विधूनने (कम्पाना) क्ष्मायते । चक्ष्माये ॥ [स्फायी, ओप्यायी] वृद्धौ (बढ़ना) स्फायते । पस्फाये । ऊयी आदि धातुओं में दीर्घ ईकार इत् जाता है और प्यायी धातु में ओकार और ईकार दोनों की इत्संज्ञा होती है । प्यायते ॥ १९२ ॥

१९३–लिड्यङोश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २९ ॥

लिट् लकार और यङ् प्रत्यय परे हों तो प्यायी धातु को पी आदेश हो । प्याय– लिट् । इस अवस्था में प्रथम द्विर्वचन प्राप्त है उस को बाध के पी आदेश हो जाता है । पीछे इस की प्राप्ति बनी रहने से द्वित्व होता है । पी+पी+एश्=पिप्ये (१५६) से यणादेश होता है । पिप्याते । पिप्यिरे । पिप्यिषे । प्यायिता । प्यायिष्यते । प्यायिषतै । प्यायिषातै । प्यायताम् । अप्यायत । प्यायेत । प्यायिषीष्ट । प्यायिषीढ्वम् । प्यायिषीध्वम् (१९१) ॥ १९३ ॥

१९४–दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६१ ॥

दीपी, जनी, बुध, तायृ और प्यायी धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में

विकल्प करके चिण् आदेश होवे त शब्द परे हो तो। यहां प्यायी धातु से परे होता है अन्य धातु आगे आवेंगे। अट्-प्याय्-चिण्-त। इस अवस्था में॥ १९४ ॥

१९५-चिणो लुक्॥ अ०॥ ६।४।१०४॥

चिण् से परे जो प्रत्यय उस का लुक् हो। यहां चिण् से परे (त) का लुक् होता है। अट्+प्याय्+चिण् = अप्यायि। यहां (च् ण्) की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में चिण् नहीं होता वहां। अप्यायिष्ट। अप्यायिषाताम्। अप्यायिषत। अप्यायिष्ठाः। अप्यायिषाथाम्। अप्यायिढ्वम्। अप्यायिध्वम् (१६१) अप्यायिषि। अप्यायिष्वहि। अप्यायिष्महि। अप्यायिष्यत॥ [तायृ] सन्तानपालनयोः (अपत्य और रक्षा) तायते। तायेते। तायन्ते। तताये। ततायिध्वे। ततायिढ्वे। तताये। ततायावहे। ततायामहे। तायितासि। तायिष्यते। तायिषतै। तायिषातै। तायताम्। अतायत। तायेत। तायिषीष्ट। अतायिष्ट। अतायिष्यत [शल] चलनसंवरणयोः (चलना और ढांकना) शलते। शेले। शेलाते। शेलिरे। शलितासे। शलिष्यते। शालिषतै। शालिषातै। शलताम्। अशलत। शलेत। शलिषीष्ट। शलिषीढ्वम्। शलिषीध्वम्। अशलिष्ट। अशलिढ्वम्। अशलिध्वम्। अशलिष्यत [वल, वल्ल] संवरणे संचरणे च (संवरण और सम्यक् विचरना) वलते। वल्लते। ववले (१२८) ववल्ले। वलिता। वलिष्यते। वालिषातै। वालिषातै। वलताम्। अवलत। वलेत। वलिषीष्ट। अवलिष्ट। अवलिष्यत [मल,मल्ल] धारणे (पदार्थों का धारण करना) मलते। मल्लते। मेले। मेलाते। मेलिरे। ममल्ले। मलिता। मलिष्यते। मालिषतै। मालिषातै। मलताम्। अमलत। मलेत। मलिषीष्ट। अमलिष्ट। अमलिष्यत [भल, भल्ल] परिभाषणहिंसादानेषु (बहुत बोलना, मारना और देना) भलते। भल्लते। बभले। बभल्ले। भलितासे। भलिष्यते। भालिषतै। भालिषातै। भलताम्। अभलत। भलेत। भलिषीष्ट। अभलिष्ट। अभलिष्यत [कल] शब्दसंख्यानयोः (शब्द और गणना) कलते। चकले। चकालिढ्वे। चकालिध्वे। कालितासे। कलिष्यते। कालिषतै। कालिषातै। कलताम्। अकलत। कलेत। कलिषीष्ट। कलिषीढ्वम्। कलिषीध्वम्। अकलिष्ट। अकलिढ्वम्। अकलिध्वम्। अकलिष्यत [कल्ल] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट बोलना) कल्लते। चकल्ले [तेवृ, देवृ] देवने (खेलना) तेवते। देवते। तितेवे। दिदेवे। तितेविढ्वे (१६१) तितेविध्वे। तेवितासे। तेविष्यते। तेविषतै। तेविषातै। तेवताम्। अतेवत। तेवेत। तेविषीष्ट। तेविषीढ्वम्। तेविषीध्वम्। अतेविष्ट। अतेविढ्वम्। अतेविध्वम् [षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ] सेवने (सेवन) सेवते।

सिषेवे । गेवते । जिगेवे । ग्लेवते । जिग्लेवे । पेवते । पिपेवे । मेवते । मिमेवे । म्लेवते । मिम्लेवे [शेवृ, खेवृ, केवृ] इत्येके । शेवते । शिशेवे । खेवते । चिखेवे । केवते । चिकेवे [रेवृ] प्लवगतौ (शीघ्र चलना) रेवते । रिरेवे । रेवितासे । रेविष्यते । रेविषतै । रेविषातै । रेवताम् । अरेवत । रेवेत । रेविषीष्ट । अरेविष्ट । अरेविष्यत ॥ इत्ययादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः सप्तत्रिंशत्समाप्ताः । ये अय आदि ३७ (सैंतीस) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिन एकनवतिः । अब यवर्गान्तों में ९१ (इक्कानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं [मव्य] बन्धने (बांधना) मव्यति । ममव्य । ममव्यतुः । मव्यिता । मव्यिष्यति । मव्यिषति । मव्यिषाति । मव्यतु । अमव्यत् । मव्येत् । मव्यात् । अमव्यीत् । अमव्यिष्यत् [सूर्क्ष्य, ईर्क्ष्य, ईर्ष्य] ईर्ष्यार्थाः (ईर्षा) सूर्क्ष्यति । ईर्क्ष्यति । ईर्ष्यति । ईर्क्ष्याञ्चकार । ईर्ष्याञ्चकार । ईर्ष्याम्बभूव । ईर्ष्यामास । ईर्ष्यिता । ईर्ष्यिष्यति । ईर्ष्यिषति । ईर्ष्यिषाति । ईर्ष्यतु । ऐर्ष्यत् । ईर्ष्येत् । ईर्ष्यात् । ऐर्ष्यीत् । ऐर्ष्यिष्यत् [हय] गतौ । हयति । जहाय । जहयतुः । हयिता । हयिष्यति । हायिषति । हायिषाति । हयतु । अहयत् । हयेत् । हय्यात् । अहयीत् (१६२) वृद्धि नहीं होती [शुच्य, चुच्य] अभिषवे (यंत्र से साररूप रस खींचना) शुच्यति । चुच्यति [हर्य] गतिकान्त्योः (गति और इच्छा) हर्यति । जहर्य [अल] भूषणपर्याप्तिवारणेषु (भूषण , सामर्थ्य और निषेध) अलति । आल । आलतुः । आलुः । अलिता । अलिष्यति । आलिषति । आलिषाति । अलतु । आलत् । अलेत् । अल्यात् ॥ १९५ ॥

१९६–अतो ल्रान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । २ ॥

अकार के समीप जो रेफ और लकार तदन्त अङ्ग के अकार को वृद्धि हो परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो । (१४४) सूत्र से विकल्प करके वृद्धि प्राप्त है उस का यह अपवाद है । मा भवानालीत् । आलिष्टाम् । आलिषुः । अकार के समीप रेफ लकार इसलिये कहे हैं कि । अवभ्रीत् । यहां अकार के समीप भकार है रेफ नहीं । [ञिफला] विशरणे (मरना) इस धातु में (ञि) और (आ) दो वर्ण इत् जाते हैं । फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः । यहां अभ्यास के झल् फकार को चर् पकार होता है इस कारण अनादेशादि के न होने से (१२५) एत्वाभ्यासलोप नहीं प्राप्त है सो (१६४) सूत्र से हो जाता है । फलिता । फलिष्यति । फालिषति । फालिषाति । फलतु । अफलत् । फलेत् । फल्यात् । अफालीत् (१९६) अफलिष्यत् [मील, श्मील, स्मील, क्ष्मील] निमेषणे (नेत्रों को शीघ्र खोलना मींचना] मीलति ।

मिमील । मीलिता । मीलिष्यति । मीलिषति । मीलषाति । मीलतु । अमीलत् । मीलेत् । मील्यात् । अमीलीत् । अमीलिष्यत् । श्मीलति । शिश्मील । स्मीलति । सिस्मील । क्ष्मीलति । चिक्ष्मील । [पील] प्रतिष्टम्भे (रोकना) पीलति । पिपील [नील] वर्णे (नीला रंग) नीलति । निनील [शील] समाधौ (निरन्तर योगाभ्यास करना) शीलति । शिशील [कील] बन्धने (बांधना) कीलति । चिकील [कूल] आवरणे (ढांकना) कूलति । चुकूल । कूलिता । कूलिष्यति । कूलिषति । कूलिषाति । कूलतु । अकूलत् । कूलेत् । कूल्यात् । अकूलीत् । अकूलिष्यत् [शूल] रुजायां सङ्घाते च (पीड़ा और समूह) शूलति । [तूल] निष्कर्षे (बाहर निकालना) तूलति । तुतूल [पूल] सङ्घाते पूलति । पुपूल । [मूल] प्रतिष्ठायाम् । मूलति । [फल] निष्पत्तौ (सिद्ध होना) फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः (१६४) अफालीत् (१९६) [चुल्ल] भावकरणे (अभिप्राय जनाना) चुल्लति । चुचुल्ल । [फुल्ल] विकसने (फूलना) फुल्लति । पुफुल्ल [चिल्ल] शैथिल्ये भावकरणे च (शिथिलता और अभिप्राय जनाना) चिल्लति । चिचिल्ल । चिल्लिता । चिल्लिष्यति । चिल्लिषति । चिल्लिषाति । चिल्लतु । अचिल्लत् । चिल्लेत् । चिल्ल्यात् । अचिल्लीत् । अचिल्लिष्यत् । [तिल] गतौ तेलति । तितेल । तितिलतुः । तेलिता । तेलिष्यति । तेलिषति । तेलिषाति । तेलतु । अतेलत् । तेलेत् । तिल्यात् । अतेलीत् । अतेलिष्यत् [तिल्ल] इत्यन्ये । तिल्लति [वेलृ, चेलृ, केलृ, खेलृ , क्ष्वेलृ, वेल्ल] चलने (चलना) वेलति । विवेल । विवेलतुः । वेलिता । वेलिष्यति । वेलिषति । वेलिषाति । वेलतु । अवेलत् । वेलेत् । वेल्यात् । अवेलीत् । अवेलिष्यत् । चेलति । चिचेल । केलति । चिकेल । खेलति । चिखेल । क्ष्वेलति । चिक्ष्वेल वेल्लति । विवेल्ल [पेलृ, फेलृ खेलृ, शेलृ, षेलृ] गतौ खेलृ धातु दूसरी वार अर्थ भिन्न होने से पढ़ा है । पेलति । पिपेल । फेलति । पिफेल । शेलति । शिशेल । सेलति । सिषेल [स्खल] सञ्चलने (चलायमान होना) स्खलति । चस्खाल (१२४) स्खलिता । स्खलिष्यति । स्खालिषति । स्खालिषाति । स्खलतु । अस्खलत् स्खलेत् । स्खल्यात् । अस्खालीत् (१९६) अस्खलिष्यत् [खल] सञ्चये । खलति । चखाल । अखालीत् [गल] अदने (खाना) गलति । जगाल । अगालीत् [षल] गतौ । सलति । ससाल । सेलतुः । सेलुः । असालीत् [दल] विशरणे (मारना) दलति । ददाल । देलतुः । दलिता । दलिष्यति । दालिषति । दालिषाति । दलतु । अदलत् । दलेत् । दल्यात् । अदालीत् । अदलिष्यत् [श्वल, श्वल्ल] आशुगमने (शीघ्र चलना) श्वलति । शश्वाल । अश्वालीत् । श्वल्लति । शश्वल्ल [खोलृ, खोर्ऋ,] गतिप्रतिघाते

(चलते से रुकजाना) खोलति । चुखोल । खोरति । चुखोर । अखोलीत् । अखोरीत् [घोर्ऋ] गतिचातुर्य्ये (चतुराई से चलना) घोरति । दुघोर । अघोरीत् [त्सर] छद्मगतौ (टेढ़ा चलना) त्सरति । तत्सार । तत्सरतुः । त्सरिता । त्सरिष्यति । त्सारिषति । त्सारिषाति । त्सरतु । अत्सरत् । त्सरेत् । त्सर्यात् । अत्सारीत् (१९६) अत्सरिष्यत् [क्मर] हूर्च्छने (कुटिलता) क्मरति । चक्मार । चक्मरतुः । अक्मारीत् [अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर] गत्यर्थाः । अभ्रति । वभ्रति । मभ्रति । चरति । आचरति । प्रचरति । विचरति । आनभ्र (१४७) यहां अभ्यास को दीर्घ और उस से परे द्विहल् धातु को नुट् का आगम (११०) इत्यादि सूत्रों से होता है । ववभ्र । आभ्रीत् । अवभ्रीत् । अमभ्रीत् । यहां अकार के समीप रेफ के न होने से (१९६) सूत्र से वृद्धि नहीं होती । चचार । चेरतुः । चरिता । चरिष्यति । चारिषति । चारिषाति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्य्यात् । अचारीत्(१९६)अचरिष्यत् [चर] भक्षणे च । चर धातु का यह दूसरा अर्थ होने से पुनः पढ़ा है [ष्ठिवु] निरसने (थूकना) इस धातु के आदि षकार को (१५२) वार्त्तिक से सकार नहीं होता और (१८६)सूत्र से इकार को दीर्घ होकर । ष्ठीवति । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः । और इस धातु का दूसरा वर्ण किन्हीं आचार्यों के मत में ठकार ही है अर्थात् जब ठकार है तो षोपदेश नहीं और जब थकार है तब षोपदेश है ठकार पक्ष में । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः इत्यादि प्रयोग अभ्यास ही में विशेष होंगे । टिष्ठेविथ । टिष्ठिवथुः । टिष्ठिव । टिष्ठेव । टिष्ठिविव । टिष्ठिविम । ष्ठेविता । ष्ठेविष्यति । ष्ठेविषति । ष्ठेविषाति । ष्ठीवति । ष्ठीवाति । ष्ठीवतु । अष्ठीवत् । ष्ठीवेत् ॥ १९६ ॥

१९७–हलि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७७ ॥

हल् प्रत्याहार में कोई वर्ण परे हो तो रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उस को दीर्घ आदेश होवे । ष्ठिव्+यासुट्+सुट्+तिप् = ष्ठीव्यात् । यहां यासुट् का यकार हल् प्रत्याहार में है । अष्ठेवीत् । अष्ठेविष्टाम् । अष्ठेविष्यत् [जि] जये (उन्नति को प्राप्त होना) यह धातु अनिट् और अकर्मक है क्योंकि इवर्णान्तों में जो सेट् पढ़े हैं उन में इस का पाठ नहीं । और इस धातु का स्वार्थ कर्त्ता से भिन्न अन्य किसी में नहीं घटता इस कारण अकर्मक है । जि+शप्+तिप् = जयति (२१) सूत्र से गुण और अय् आदेश होता है । जयतः । जयन्ति ॥ १९७ ॥

१९८–सन्लिटोर्जेः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५७ ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हों तो जि धातु के अभ्यास से परे उत्तरभाग को कव-

र्गादेश हो। जि—णल्। इस अवस्था में प्रथम (६०) सूत्र से वृद्धि होकर द्वित्व होता है। जै+जै+णल्=जिगाय। यहां परभाग के जकार को गकार हो जाता है जिग्यतुः। जिग्युः (१५६) सूत्र से यणादेश होता है। जिगेथ (१५७) सूत्र से थल में इट् का निषेध और जिगयिथ (१४६) सूत्र से भारद्वाज के मत में अकारान्तों के निषेध का नियम होने से इडागम हो जाता है। जिग्यथुः। जिग्य। जिगाय (१४३) जिगय। जिग्यिव। जिग्यिम (लुट्) जेता। जेतारौ। जेतारः। जेतासि। जेतास्थः। जेतास्थ। जेतास्मि। जेतास्वः। जेतास्मः। (लृट्) जेष्यति। जेष्यतः। जेष्यन्ति। जेष्यसि। जेष्यथः। जेष्यथ। जेष्यामि। जेष्यावः। जेष्यामः। (लेट्) जैषति। जैषाति। जैषत्। जैषात्। जैषद्। जैषाद्। जेषति। जेषाति। जेषत्। जेषात्। जेषद्। जेषाद्। जयति। जयाति। जयत्। जयात्। जयद्। जयाद्। इत्यादि। इसी प्रकार तस् आदि में जानो। जयतु। जयतात्। जयताम्। जयन्तु। जय। जयतात्। जयतम्। जयत। जयानि। जयाव। जयाम। अजयत्। अजयताम् अजयन्। अजयः। अजयतम्। अजयत। अजयम्। अजयाव। अजयाम। जयेत्। जयेताम्। जयेयुः। जयेः। जयेतम्। जयेत। जयेयम्। जयेव। जयेम। (१६०) सूत्र से दीर्घ होकर। जीयात्। जीयास्ताम्। जीयासुः। जीयाः। जीयास्तम्। जीयास्त। जीयासम्। जीयास्व। जीयास्म। अट्+जि+सिच्+तिप् = अजैषीत् (१५८) सूत्र से इकार को वृद्धि हो जाती है। अजैष्टाम्। अजैषुः। अजैषीः। अजैष्टम्। अजैष्ट। अजैषम्। अजैष्व। अजैष्म। अजेष्यत्। अजेष्यताम्। अजेष्यन्। [जीव] प्राणधारणे (प्राणों का धारण करना) जीवति। जिजीव। जीविता। जीविष्यति। जीविषति। जीविषाति। जीवतु। अजीवत्। जीवेत्। जीव्यात्। अजीवीत्। अजीविष्यत्। जीव धातु के गुरूपध होने से (५१) सूत्र से गुण नहीं होता। [पीव, मीव, तीव, णीव] स्थौल्ये (मोटापन) पीवति। मीवति। तीवति। नीवति [ष्ठिवु, क्षेवु] निरसने (फेंकना) क्षेवति। चिक्षेव। चिक्षिवतुः। चिक्षिवुः। क्षेविता। क्षेविष्यति। क्षेविषति। क्षेविषाति। क्षेवतु। अक्षेवत्। क्षेवेत्। क्षीव्यात् (१६७) सूत्र से वकार की उपधा को दीर्घ होता है। क्षेव्यात्। अक्षेवीत्। अक्षेविष्यत्। [उर्वी, तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी, धुर्वी] हिंसार्थाः (१३०) सूत्र से रेफ की उपधा उकारों को दीर्घ आदेश हो जाता है। ऊर्वति। ऊर्वाञ्चकार। ऊर्वाञ्चक्रतुः। ऊर्वाञ्चक्रुः। ऊर्वाञ्चकर्थ। ऊर्वाम्बभूव। ऊर्वामास। ऊर्विता। ऊर्विष्यति। ऊर्विषति। ऊर्विषाति। ऊर्वतु। और्वत्। ऊर्वेत्। ऊर्व्यात्। और्वीत्। और्विष्यत्। तूर्वति। तुतूर्व। तुथूर्व। दूर्वति। दुदूर्व। धूर्वति। दुधूर्व। [गुर्वी] उद्यमने (उद्यम) गूर्वति। जुगूर्व [मुर्वी] बन्धने (बांधना) मूर्वति। मुमूर्व [पुर्व, पर्व,

मर्व] पूरणे (पूरा होना) पूर्वति । पुपूर्व । पर्वति । पपर्व । पार्विता । पर्विष्यति । पर्विषति । पर्विषाति । पर्वतु । अपर्वत् । पर्वेत् । अपर्वीत् । अपर्विष्यत् [चर्व] अदने (खाना) चर्वति । चचर्व । [भर्व] हिंसायाम् । भर्वति । बभर्व [कर्व, खर्व, गर्व] दर्पे (अहंकार करना) कर्वति । चकर्व । खर्वति । चखर्व । गर्वति । जगर्व । [अर्व, शर्व, षर्व] हिंसायाम् । अर्वति । आनर्व । आनर्वतुः। शर्वति । सर्वति । [इवि] व्याप्तौ (व्याप्त होना) इन्वति । इस धातु में नुम् के नकारको परसवर्ण की प्राप्ति न होने से वकार में मिल जाता है। इन्वाञ्चकार। इन्वाम्बभूव। इन्वामास । इन्विता । इन्विष्यति । इन्विषति । इन्विषाति। इन्वतु । ऐन्वत् । इन्वेत् । इन्व्यात् । ऐन्वीत् । ऐन्विष्यत् । [पिवि, मिवि, णिवि] सेवने सेचने च (सेवन करना और सींचना) पिन्वति । पिपिन्व । मिन्वति । मिमिन्व । निन्वति । निनिन्व । [हिवि, दिवि, धिवि, जिवि] प्रीणनार्थाः (तृप्ति होना) हिन्वति । जिहिन्व । दिन्वति । दिदिन्व । दिन्विता । दिन्विष्यति । दिन्विषति । दिन्विषाति । दिन्वतु । अदिन्वत् । दिन्वेत् । दिन्व्यात् । अदिन्वीत् । अदिन्विष्यत् ॥ १९८ ॥

१९९—धिन्विकृण्व्योर च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८० ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धिन्वि और कृण्वि धातुसे उ प्रत्यय और इन धातुओं को अकार आदेश हो जावे । अकार आदेश सामान्य विधान होने से अलोन्त्यपरिभाषा के बल से अन्त्य अल् वकार के स्थान में होता है और यह उ प्रत्यय शप् का अपवाद है। उ प्रत्यय की तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण(४९) सूत्र से आर्द्धधातुक संज्ञा होती है । धि–न्–अ–उ (१७२) सूत्र से अकार का लोप हो कर । धिन्–उ–तिप् । इस अवस्था में उ (आर्द्धधातुक) प्रत्यय को मान के धि के इकार को (५१) सूत्र से गुण प्राप्त है सो (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ) इस परिभाषा सूत्र से अकारलोप के स्थानिवत् होने से गुण नहीं होता । फिर उ प्रत्यय को (२१) सूत्र से गुण होकर । धिन्+उ+तिप् = धिनोति । धिन्+उ+तस् = धिनुतः । यहां(९७) सूत्र से तस् की ङित् संज्ञा होकर (४८) से गुण का निषेध होता है। धिन्वन्ति । धिनोषि। धिनुथः । धिनुथ । धिनोमि ॥ १९९ ॥

२००—लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार उस का विकल्प करके लोप

हो व और म परे हों तो । धिनु+वस् = धिन्वः । धिन्मः । धिनुवः । धिनुमः । दिधिन्व । दिधिन्वतुः । धिन्विता । धिन्विष्यति । धिन्विषति । धिन्विषाति । धिनवति । धिनवाति । यहां (२१) सूत्र से गुण होकर ओकार को अट् आट् निमित्त अव् आदेश होता है । धिनोतु । धिनुतात् । धिनुताम् । धिन्वन्तु ॥ २०० ॥

२०१-उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्॥ अ०॥६।४।१०६॥

संयोगी अक्षर जिस के पूर्व न हों ऐसा जो प्रत्यय का उकार तदन्त अङ्ग से परे जो हि उस का लुक् होवे । धिनु+हि = धिनु । धिनुतात् । धिनुतम् । धिनुत । धिनु+मिप्=धिनवानि । यहां (७२) सूत्र से (नि) आदेश और(११८)सूत्रसे आट्का आगम पित् होकर वस् मस् में भी गुण हो जाता है । धिनवाव । धिनवाम । अधिनोत् । अधिनुताम् । अधिन्वन् । अधिनोः अधिनुतम् । अधिनुत । अधिनवम् । अधिन्व।अधिनुव। अधिन्म । अधिनुम । विधिलिङ् में अदन्त अङ्ग से परे यासुट् के न होने से (८१)सूत्र से इय् आदेश नहीं होता । धिनुयात् । धिनुयाताम् । धिनुयुः । धिनुयाः । धिनुयातम् । धिनुयात । धिनुयाम् । धिनुयाव । धिनुयाम । और यहां (७८) से यासुट् के ङित् होने से (४९) सूत्र से गुण का निषेध होताहै और आशिष्लिङ् की(८४)सूत्र से अर्द्धधातुक संज्ञा होने से उ प्रत्यय नहीं होता। धिन्व्यात् । धिन्व्यास्ताम् । धिन्व्यासुः । अधिन्वीत् । अधिन्विष्टाम् । अधिन्विषुः । अधिन्विष्यत् । जिन्वति । जिजिन्व । जिन्विता । जिन्विष्यति । जिन्विषति । जिन्विषाति । जिन्वतु । अजिन्वत् । जिन्वेत् । जिन्व्यात् । अजिन्वीत् । अजिन्विष्यत्[रिवि,रवि, धवि] गत्यर्थाः । रिण्वति । रिरिण्व । रण्वति । ररण्व । यहां नुम् के नकार को णत्व होता है । धन्वति । दधन्व [कृवि] हिंसाकरणयोश्च (हिंसा और करना) चकार से यह धातु गत्यर्थ भी है । और धिवि धातु में जो सूत्र लगते हैं वे सब इसमें भी जानो परन्तु ॥ २०१ ॥

२०२-वा०-ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ॥ ८ । ४ । १ ॥

ऋवर्ण से परे जो नकार उस को णकार आदेश सामान्य से अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान में भी हो । इस वार्त्तिक से नुम् के नकार को सर्वत्र ऋकार से परे णत्व होता है । कृ+नुम्+व्+उ+तिप् = कृणोति । कृणुतः । कृण्वन्ति । कृणोषि । कृणुथः । कृणुथ । कृणोमि । कृण्वः।कृणुवः । कृण्मः । कृणुमः । चकृण्व । चकृण्वतुः । कृण्विता । कृण्विष्यति । कृण्विषति कृण्विषाति । कृणवति । कृणवाति । कृणोतु ।

अकृणोत् । अकृणव । अकृणुव । अकृणम । अकृणुम । कृणुयात् । कृण्व्यात् । अकृणवीत् । अकृणिवष्यत् [मव] बंधने (बांधना) मवति । ममाव । मेवतुः । मेवुः । मविता । मविष्यति । माविषाति । माविषाति । मवतु । अमवत् । मवेत् मव्यात् । अमावीत् । अमवीत् । अमाविष्यत् । [अव] रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु (गति, रक्षा, शोभा, प्रीति, तृप्ति, बोधहोना, प्रवेश करना, सुनना, अध्यक्षका कार्य साधना, मांगना, चेष्टा, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, लिपटना, हिंसा, देना, विभाग करना और बढ़ाना) अवति । आव । आवतुः । आवुः । अविष्यति । आविषाति । आविषाति। अवतु । आवत् । अवेत् । अव्यात् । आवीत् । आविष्यत् ॥ इति मव्यादय उदात्ता उदात्तेतो जयतिवर्जं परस्मैभाषाः षण्णवतिः । ये ९६ मव्य आदि धातु समाप्त हुए ॥

[धावु] गतिशुद्ध्योः (गति और शुद्धि) यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् इस का अन्त्य वर्ण स्वरित् इत्संज्ञक होता है (१०३) सूत्र से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है इसलिये उभयपद के प्रयोग होते हैं । धावते । धावेते । धावन्ते । धावति । धावतः । धावन्ति । दधावे । दधाव। धावितासे । धावितासि । धाविष्यते । धाविष्यति । धाविषतै । धाविषातै । धाविषति । धाविषाति ।धावताम् । धावतु । अधावत ।अधावत् । धावेत। धावेत् । धाविषीष्ट । धाव्यात् । अधाविष्ट । अधावीत् । अधाविष्यत । अधाविष्यत् ॥

अथोष्मान्ता आत्मनेपदिनो द्विपञ्चाशत् । अब ऊष्मान्त अर्थात् श, ष, स, ह, ये वर्ण जिन के अन्त में हों ऐसे ५२ (बावन) धातु कहते हैं । [धुक्ष, धिक्ष] सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु (प्रकाश, दुःख और जीवन) धुक्षते । दुधुक्षे । धिक्षते । दिधिक्षे । धुक्षितासे । धुक्षिष्यते । धुक्षिषतै । धुक्षिषातै । धुक्षताम् । अधुक्षत । धुक्षेत ।धुक्षिषीष्ट । अधुक्षिष्ट । अधुक्षिष्यत । [वृक्ष] वरणे (ग्रहण करना) वृक्षते । ववृक्षे । [शिक्ष] विद्योपादाने (विद्या का ग्रहण करना) शिक्षते ।शिशिक्षे [भिक्ष] भिक्षायामलाभे लाभे च (भीख मांगना मिले वा न मिले) भिक्षते । बिभिक्षे । [क्लेश] अव्यक्तायां वाचि, बाधन इत्यन्ये (अस्पष्ट बोलना) और किसी२ के मतमें दुःख देने अर्थ में भी है । क्लेशते । चिक्लेशे । क्लेशितासे । क्लेशिष्यते । क्लेशिषतै । क्लेशिषातै । क्लेशताम् । अक्लेशत । क्लेशेत । क्लेशिषीष्ट । अक्लेशिष्ट । अक्लेशिष्यत । [दक्ष] वृद्धौ शीघ्रार्थे च (बढ़ना और शीघ्रता करना) दक्षते । ददक्षे [दीक्ष] मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (मुण्डन,

यज्ञ, यज्ञोपवीतधारण, नियम, सत्य भाषण आदि वा चान्द्रायण आदि तथा ब्रह्मचर्य्या-दि का उपदेश) दीक्षते । दिदीक्षे [ईक्ष] दर्शने (विचारपूर्वक देखना) ईक्षते । ईक्षाञ्चक्रे । ईक्षाम्बभूव । ईक्षामास । [ईष] गतिहिंसादर्शनेषु (गति, हिंसा और देखना) ईषते । ईषाञ्चक्रे । ईषाम्बभूव । ईषामास । ईषितासे । ईषिष्यते । ईषिषतै । ईषिषातै । ईषताम् । ऐषत । ईषेत । ईषिषीष्ट । ऐषिष्ट । ऐषिष्यत । [भाष] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते । भाषिषतै । भाषिषातै । भाषताम् । अभाषत । भाषेत । भाषिषीष्ट । अभाषिष्ट । अभाषिष्यत । [वर्ष] स्नेहने (चिकनाई) वर्षते । ववर्षे । [गेषृ] अन्विच्छायाम् (खोजना) गेषते । जिगेषे । [ग्लेषृ] इत्येके । ग्लेषते । जिग्लेषे [पेषृ] प्रयत्ने । पेषते । पिपेषे । पेषिता । पेषिष्यते । पेषिषतै । पेषिषातै । पेषताम् । अपेषत । पेषेत । पेषिषीष्ट । अपेषिष्ट । अपेषिष्यत । [जेषृ, णेषृ, एषृ, प्रेषृ] गतौ । जेषते । नेषते । एषते । एषाञ्चक्रे एषाम्बभूव एषामास । प्रेषते । [रेषृ, हेषृ, ह्रेषृ] अव्यक्ते शब्दे (गड़बड़ शब्द होना) रेषते । रिरेषे । हेषते । जिहेषे । ह्रेषते । जिह्रेषे । [कासृ] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द का होना) कासते । कासाञ्चक्रे । कासाम्बभूव । कासामास (१६९) (१७०) सूत्र वार्त्तिकों से यहां आम् प्रत्यय होता है । कासितासे । कासिष्यते । कासिषतै । कासिषातै । कासताम् । अकासत । कासेत । कासिषीष्ट । अकासिष्ट । अकासिष्यत । [भासृ] दीप्तौ । भासते । बभासे । [णासृ, रासृ] शब्दे । नासते । रासते । ररासे । रासितासे । रासिष्यते । रासिषतै । रासिषातै । रासताम् । अरासत । रासेत । रासिषीष्ट । अरासिष्ट । अरासिष्यत । [णस] कौटिल्ये (कुटिलता) नसते । नेसे । नेसाते । [भ्यस] भये (डरना) भ्यसते । बभ्यसे । [आङःशसि] इच्छायाम् । इस धातु के पूर्व आङ् उपसर्ग इसलिये पढ़ा है कि इसी आङ् उपसर्ग का नियम रहे अन्य उपसर्ग इसके पूर्व न लगे । आशंसते । आशशंसे । आशंसिता । आशंसिष्ट [ग्रसु, ग्लसु] अदने (खाना) ग्रसते । ग्लसते । जग्रसे । जग्लसे । ग्रसिता । ग्रसिष्यते । ग्रसिषतै । ग्रसिषातै । ग्रसताम् । अग्रसत । ग्रसेत । ग्रसिषीष्ट । अग्रसिष्ट । अग्रसिष्यत [ईह] चेष्टायाम् (क्रिया) ईहते । ईहाञ्चक्रे । ईहाम्बभूव । ईहामास । ईहितासे । ईहिष्यते । ईहिषतै । ईहिषातै । ईहताम् । ऐहत । ईहेत । ईहिषीष्ट । ऐहिष्ट । ऐहिष्यत [वहि, महि] वृद्धौ (बढ़ना) वंहते । मंहते । ववंहे । वंहिता । वंहिष्यते । वंहिषतै । वंहिषातै । वंहताम् । अवंहत । वंहेत । वंहिषीष्ट । अवंहिष्ट । अवंहिष्यत । [अहि] गतौ । अंहते । आनंहे । आनंहाते । अंहिता । अंहिष्यते । अंहि-

षतै । अंहिषातै । अंहताम् । आंहत । अंहेत । अंहिषीष्ट । आंहिष्ट । आंहिष्यत । [गर्ह, गल्ह] कुत्सायाम् (निन्दा) गर्हते । गल्हते । जगर्हे । जगल्हे । [बर्ह, बल्ह] प्राधान्ये (श्रेष्ठता) बर्हते । बबर्हे । बल्हते । बबल्हे । [वर्ह, वल्ह] परिभाषणहिंसाच्छादनेषु (बहुत बोलना, हिंसा और दबाना) वर्हते ।वल्हते । पूर्व दोनों धातुओं और इन दोनों में इतना ही भेद है कि पहिले दोनों पवर्गीय बकार और इन दोनों में यवर्गीय है [प्लिह] गतौ (चलना) प्लेहते । पिप्लिहे । प्लेहिता । प्लेहिष्यते । प्लेहिषतै । प्लेहिषातै । प्लेहताम् । अप्लेहत । प्लेहेत । प्लेहिषीष्ट । अप्लेहिष्ट । अप्लेहिष्यत । [वेहृ, जेहृ, बाहृ] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) वेहते । विवेहे । विवेहिढ्वे । विवेहिध्वे।वेहिता । वेहिष्यते । वेहिषतै । वेहिषातै । वेहताम् । अवेहत । वेहेत । वेहिषीष्ट । वेहिषीढ्वम् । वेहिषीध्वम् । अवेहिष्ट । अवेहिढ्वम् । अवेहिध्वम् । अवेहिष्यत । जेहते । जिजेहे । अजेहिष्ट । बाहते । बबाहे । [द्राहृ] निद्राक्षये (जागना) द्राहते । दद्राहे । दद्राहिढ्वे।दद्राहिध्वे । द्राहितासे । द्राहिषतै । द्राहिषातै । द्राहताम् । अद्राहत । द्राहेत । द्राहिषीष्ट । अद्राहिष्ट। अद्राहिढ्वम् । अद्राहिध्वम् । अद्राहिष्यत । निक्षेप इत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु किसी के निकट धन रखने अर्थ में है । [काशृ] दीप्तौ (प्रकाश होना) काशते । चकाशे । काशितासे । काशिष्यते । काशिषतै । काशिषातै । काशताम् । अकाशत । काशेत । काशिषीष्ट । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत । [ऊह] वितर्के (अनेक प्रकार के तर्क उठाना) ऊहते । ऊहाञ्चक्रे । ऊहाम्बभूव । ऊहामास । ऊहिता । ऊहिष्यते । ऊहिषतै । ऊहिषातै । ऊहताम् । औहत । ऊहेत । ऊहिषीष्ट। औहिष्ट । औहिढवम् । औहिध्वम् । औहिष्यत । [गाहू] विलोडने (विलोना) यह भी धातु ऊदित् है । गाहते। गाहेते । गाहन्ते । गाहसे । गाहेथे । गाहध्वे । गाहे । गाहावहे । गाहामहे । जगाहे । जगाहाते । जगाहिरे । जगाहिषे । और जिस पक्ष में (१४०) से इट् नहीं होता वहां । जगाह्—से । इस अवस्था में ॥ २०२ ॥

२०३—हो ढः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३१ ॥

झल् जिस से परे हो वा पदान्त में जो हकार उस को ढकार आदेश हो। यहां गाह् धातु के हकार को ढकार होकर ॥ २०३ ॥

२०४—एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः॥अ०॥८।२।३७॥

झलादि स और ध्व परे हों तो वा पदान्त में धातु का अवयव जो झषन्त एकाच् बश्

प्रत्याहार में कोई वर्ण हो उस को भष् आदेश हो। यहां गाह् धातु के (बश्) गकार को (भष्) घकार हो जाता है। बश् प्रत्याहार में (ब, ग, ड, द,) चार वर्ण हैं और भष् प्रत्याहार में भी (भ, घ, ढ, ध,) चार वर्ण हैं इन का यथासंख्य क्रम तो लगता है परन्तु (ड) स्थानी के न होने से ढ आदेश कहीं नहीं आता। अब जघाढ्—से। इस अवस्था में ॥ २०४ ॥

२०५—षढोः कः सि ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४१ ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो षकार और ढकार को ककार आदेश हो जावे। यहां ढकार होकर। जघाक्+से=जघाक्षे (५६) से षत्व हो जाता है और इसी ककार षकार के संयोग को (क्ष) बोलते हैं। परन्तु यह लिखने और बोलने की परिपाटी यथार्थ नहीं। ठीक तो यही है कि लिखने और बोलने में (क्—ष्) के स्वरूप स्पष्ट विदित हों। जगाहाथे। जगाहिढ्वे (१९१) जगाहिध्वे। और जिस पक्ष में (१४०) से इट् का आगम नहीं होता वहां। जघाढ्—ध्वे। इस अवस्था में तवर्ग ध्वे के धकार को ढकार हो जाता है पीछे ॥ २०५ ॥

२०६—ढो ढे लोपः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १३॥

ढकार का लोप हो ढकार परे हो तो। इस से गाह् धातु के ढकार का लोप होकर। जगाढ्वे। जगाहे। जगाहिवहे। जगाह्वहे। जगाहिमहे। जगाह्महे। (लुट्) गाहिता। गाहितारौ। गाहितारः। गाहितासे। अनिट् पक्ष में। गाह्+तास्+डा = गाढा। यहां (१४१) से तास् के तकार को धकार और (२०३) से ढत्व (ष्टुना ष्टुः) से धकार को ढकार और प्रथम ढकार का (२०६) से लोप होता है। गाढारौ। गाढारः। गाढासे। गाढासाथे। गाढाध्वे। गाढाहे। गाढास्वहे। गाढास्महे। गाहिष्यते। गाहिष्येते। गाहिष्यन्ते। अनिट् पक्ष में। गाह्+स्य+ते=घाक्ष्यते।घाक्ष्येते। घाक्ष्यन्ते गाहिषतै। गाहिषातै। गाह् +स् + अट् +त=घाक्षतै।घाक्षातै। गाहतै।गाहातै। गाहते। गाहाते।गाहताम्। अगाहत। गाहेत। गाहिषीष्ट। घाक्षीष्ट। गाहिषीढ्वम्। गाहिषीध्वम्। घाक्षीध्वम्। अगाहिष्ट। अगाहिषाताम्। अगाहिषत। अनिट् पक्ष में। अट्+गाह्+सिच्+त=अगाढ। यहां (१४२) से सिच् के सकार का लोप (१४१) से तकार को धकार और पूर्वोक्त रीति से सब काम जानो। अगाह्+सिच्+आताम्= अघाक्षाताम्। अघाक्षत। अगाह्+सिच्+थास्=अगाढाः। अघाक्षाथाम्। अगाहिढ्वम्।

अगाहिध्वम् । अघाढ्वम् । अघाक्षि । अघाक्ष्वहि । अघाक्ष्महि । अगाहिष्यत । अघाक्ष्यत । अघाक्ष्येताम् । अघाक्ष्यन्त [गृहू] ग्रहणे (ग्रहण) गर्हते। जगृहे । जगृहाते । जगृहिरे । यह भी धातु ऊदित् है और गाहू के समान सब काम हकारान्त के होंगे । जगृहिषे । जघृक्षे। जगृहाथे । जगृहिढ्वे । जगृहिध्वे । जघृढ्वे।जगृहे । जगृहिवहे । जगृह्वहे । जगृहिमहे । जगृह्महे । गर्हितासे । गर्ढा । गर्ढारौ । गर्ढारः । गर्ढासे । गर्हिष्यते । घर्क्ष्यते । घर्क्ष्येते घर्क्ष्यन्ते । गर्हिषतै । गर्हिषातै । घर्क्षतै । घर्क्षातै । गर्हतै । गर्हातै । गर्हताम् । अगर्हत । गर्हेत । गर्हिषीष्ट । घृक्षीष्ट (१६३) से कित्वत् हो जाने से गुण नहीं होता । गर्हिषीढ्वम् । गर्हिषीध्वम् । घृक्षीध्वम् । अगर्हिष्ट । अगर्हिषाताम् । अगर्हिषत । अनिट् पक्ष में । अट्—गृह—च्लि—त । इस अवस्था में ॥ २०६ ॥

२०७—शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४५ ॥

इक् जिस की उपधा में हो ऐसा जो शलन्त धातु उस से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में क्स आदेश हो । यह सूत्र (८८) का अपवाद है । क्स में से ककार की इत्संज्ञा हो कर । अट्+गृह्+स+त=अघृक्षत । अट्—गृह्—स—आताम् । इस अवस्था में ॥ २०७ ॥

२०८—क्सस्याचि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७२ ॥

क्स प्रत्यय का लोप हो अजादि प्रत्यय परे हो तो । यहां लोपरूप आदेश अन्त्य अल् के स्थान में होता है । अट्+गृह्+स+आताम्=अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त । घृक्षथाः । अघृक्षाथाम्। अगर्हिढ्वम् । अगर्हिध्वम्। अघृक्षध्वम्। अट्+गृह्+क्स+इट्= अघृक्षि । यहां भी अजादि इट् प्रत्यय के परे क्स के अकार का लोप हो जाता है । अघृक्षावहि । अघृक्षामहि । अगर्हिष्यत । अघर्क्ष्यत । [ग्लह] च । यह धातु भी ग्रहण अर्थ में ही है । ग्लहते । जग्लहे । ग्लहिता । ग्लहिष्यते । ग्लहिषतै । ग्लहिषातै । ग्लहताम्। अग्लहत । ग्लहेत । ग्लहिषीष्ट । अग्लहिष्ट । अग्लहिष्यत। [घुषि] कान्तिकरणे (इच्छा करना) घुंषते । जुघुंषे । घुंषिता । घुंषिष्यते । घुंषिषतै । घुंषिषातै । घुंषताम् । अघुंषत । घुंषेत ।घुंषिषीष्ट । अघुंषीष्ट । अघुंषिष्यत । इति घुक्षादय उदात्ता अनुदात्तेत् आत्मनेभाषा द्विपंचाशत् समाप्ताः । ये धुक्ष आदि आत्मनेपदी ५२ (बावन) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पञ्चनवतिः । अब ९५ (पंचानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं।

[घुषिर्] अविशब्दने। इस शब्द में से तीन प्रकार का अर्थ होता है एक तो विशब्दन (प्रतिज्ञा) उस का निषेध् दूसरा अवि (भेड़) का शब्द होना और तीसरा वि (पक्षी) के शब्द का निषेध अर्थात् अन्य प्राणी का शब्द होना। घोषति। जुघोष। घोषितासि। घोषिष्यति। घोषिषति। घोषिषाति। घोषतु। अघोषत्। घोषेत्। घुष्यात्। और इस धातु में इर् भाग की इत्संज्ञा होती है। इस कारण (१३८) से च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके होता है। अघुष्+अङ्+तिप्=अघुषत्। अघुषाताम्। अघुषन्। अघुषः। अघुषतम्। अघुषत। अघुषम्। अघुषाव। अघुषाम॥ सिच् पक्ष में। अघोषीत्। अघोषिष्टाम्। अघोषिषुः। अघोषिष्यत्। अक्षू] व्याप्तौ (व्यापकता)॥ २०८॥

२०९—अक्षोऽन्यतरस्याम्॥ अ०॥ ३। १। ७५॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो अक्षू धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके होवे। यह सूत्र (१९) का अपवाद है। इस कारण पक्ष में शप् ही होता है। श्नु प्रत्यय के शकार की इत्संज्ञा होके। अक्ष्+नु+तिप्=अक्ष्णोति। यहां नु के उकार को (३१) से गुण होता है अक्ष्णुतः। अक्ष्णुवन्ति। यहां (१५६) से श्नु प्रत्यय को उवङ् आदेश होता है। अक्ष्णोषि। अक्ष्णुथः। अक्ष्णुथ। अक्ष्णोमि। अक्ष्णुवः। अक्ष्णुमः (२००) संयोग पूर्व होने से उकार का लोप विकल्प से नहीं होता। जिस पक्ष में श्नु प्रत्यय नहीं होता वहां शप्। अक्षति। अक्षतः। अक्षन्ति। आनक्ष। आनक्षतुः। आनक्षुः। यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इट् का विकल्प होता है। आनक्षिथ। अनिट् पक्ष में। आनक्ष्—थल्। इस अवस्था में॥ २०९॥

२१०—स्कोः संयोगाद्योरन्ते च॥ अ०॥ ८। २। २९॥

पदान्त में वा झल् जिस से परे हो ऐसा जो संयोग उस की आदि के जो स् और क् हैं उन का लोप होवे। यहां संयोग की आदि ककार है और झल् थकार परे है उस (क्) का लोप हो कर थल् के थकार को (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से ठकार हो जाता है। आनष्ठ। आनक्षथुः। आनक्ष। आनक्षिव। आनक्ष्व। आनक्षिम। आनक्ष्म। अक्षिता। अक्षितारौ। अनिट् पक्ष में। अक्ष्+तास्+डा=अष्टा। अष्टारौ। अष्टारः। अक्षिष्यति। अक्ष्—स्य—तिप्। यहां (२१०) संयोगादि ककार का लोप मूर्द्धन्य ष् को (२०५) क् और षत्व होकर। अक्ष्यति। अक्ष्यतः। अक्ष्यन्ति। अक्षिषति। अक्षिषाति। अक्षति। अक्षाति। अक्ष्णवति। अक्ष्णवाति। इत्यादि। अक्ष्णोतु। अक्ष्णुतात्। अक्ष्णुताम्। अक्ष्णुवन्तु (१५६) अक्ष्णुहि। यहां संयोगपूर्वक उकार

के होने से हि का लुक् (२०१) से नहीं होता। अक्ष्णुतात्। अक्ष्णुतम्। अक्ष्णुत। अक्ष्णवानि। अक्ष्णवाव। अक्ष्णवाम। यहां आट् के आगम के पित् (११८) होने से श्नु को गुण हो जाता है। अक्षतु। आक्ष्णोत्। आक्ष्णुताम्। अक्ष्णुवन्। आक्ष्णोः। आक्ष्णुतम्। आक्ष्णुत। आक्ष्णवम्। आक्ष्णुव। आक्ष्णुम। आक्षत्। अक्ष्णुयात्। अक्ष्णुयाताम्। अक्ष्णु+यासुट्+जस्=अक्ष्णुयुः। यहां (८१) से इयू आदेश की प्राप्ति न होने से (८३) सूत्र से पररूप एकादेश हो जाता है। अक्ष्णुयाः। अक्ष्णुयाताम्। अक्ष्णुयात। अक्ष्णुयाम्। अक्ष्णुयाव। अक्ष्णुयाम। अक्षेत्। अक्षेताम्। अक्षेयुः। अक्ष्यात्। अक्ष्यास्ताम्। अक्ष्यासुः। माभवानक्षीत्। आक्षिष्टाम्। आक्षिषुः (१३६) से वृद्धि नहीं होती और अनिट् पक्ष में तो वृद्धि (१३५) से हो जाती है। आकृष्+सिच्+ईट्+तिप्=आक्षीत्। आकृष्+सिच्+तस्=आष्टाम्। यहां संयोगादि ककार का लोप (२१०) और सिच् के सकार का लोप (१४२) से होता है आकृष्+सिच्+ईट्+सिप्=आक्षीः। आष्टम्। आष्ट। आक्ष्म। आक्ष्व। आक्ष्म। आक्षिष्यत्। आक्ष्यत्। आक्ष्याताम्। आक्ष्यन् [तक्षू, त्वक्षू] तनूकरणे (सूक्ष्म करना)॥२१०॥

२११-तनूकरणे तक्षः॥ अ०॥ ३।१।७६॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो तनूकरण अर्थ में वर्त्तमान तक्ष धातु से श्न प्रत्यय विकल्प करके हो। यह सूत्र भी शप् का ही अपवाद है। और यह धातु भी ऊदित् है इसलिये सब लकारों में इस का साधुत्व अक्षू धातु के समान जानना चाहिये। तक्ष्णोति। तक्ष्णुतः। तक्ष्णुवन्ति। तक्षति। ततक्ष। ततक्षतुः। ततक्षुः। ततक्षिथ। ततष्ठ। तक्षिता। तष्टा। तष्टारौ। तष्टारः। तक्षिष्यति। तक्ष्यति। तक्षिषति। तक्षिषाति। तक्षति। तक्षाति। तक्ष्णवति। तक्ष्णवाति। तक्ष्णोतु। तक्षतु। अतक्ष्णोत्। अतक्षत्। तक्ष्णुयात्। तक्षेत्। तक्ष्यात्। अतक्षीत्। अताक्षिष्टाम्। अताक्षिषुः। अताक्षीत्। अताष्टाम्। अताक्षुः। अतक्षिष्यत्। अतक्ष्यत्। त्वक्षू धातु के प्रयोग आर्द्धधातुक विषय में ऊदित् के होने से तक्षू के तुल्य होते हैं और सार्वधातुक में कुछ विशेष नहीं। त्वक्षति। तत्वक्ष। तत्वक्षिथ। तत्वष्ठ। त्वक्षिता। त्वष्टा। त्वक्षिष्यति। त्वक्ष्यति। त्वक्षिषति। त्वक्षिषाति। त्वक्षति। त्वक्षाति। त्वक्षतु। अत्वक्षत्। त्वक्षेत्। त्वक्ष्यात्। अत्वक्षीत्। अत्वाक्षीत्। अत्वाष्टाम्। अत्वाक्षुः। अत्वक्षिष्यत्। अत्वक्ष्यत् [उक्ष] सेचने (सींचना) उक्षति। उक्षाञ्चकार। उक्षाम्बभूव। उक्षामास। उक्षिता। उक्षिष्यति। उक्षिषति। उक्षिषाति। उक्षतु। औक्षत्। उक्षेत्। उक्ष्यात्। औक्षीत्। औक्षिष्यत्। [रक्ष]

पालने । रक्षति । ररक्ष । रक्षिता । रक्षिष्यति । रक्षिषति । रक्षिषाति । रक्षतु । अरक्षत् । रक्षेत् । रक्ष्यात् । अरक्षीत् । अरक्षिष्यत् । [णिक्ष] चुम्बने । (चूंवना) निक्षति । निनिक्ष । [तृक्ष, स्तृक्ष, णक्ष] गतौ । तृक्षति । ततृक्ष । स्तृक्षति । सस्तृक्ष । नक्षति । ननक्ष । [वक्ष] रोषे (रिषाना) वक्षति । ववक्ष । वक्षिता । वक्षिष्यति । वक्षिषति । वक्षिषाति । वक्षतु । अवक्षत् । वक्षेत् । वक्ष्यात् । अवक्षीत् । अवक्षिष्यत् । सङ्घात इत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु संघात अर्थ में है [मृक्ष] सङ्घाते । मृक्षति । ममृक्ष [मृक्ष] इत्येके । किन्हीं के मत में यह धातु रेफवान् है ऋकारवान् नहीं [तक्ष] त्वचने (ढांपना) तक्षति [पक्ष] परिग्रह इत्येके (हठ करना) किन्हीं का मत है । पक्षति । पपक्ष [सूर्क्ष्य] आदरे (मान्य करना) सूर्क्ष्यति । सुसूर्क्ष्य । [काक्षि, वाक्षि, माक्षि] काङ्क्षायाम् (अभिलाषा) काङ्क्षति । वाङ्क्षति । माङ्क्षति [द्राक्षि, ध्राक्षि, ध्वाक्षि] घोरवासिते च (पाप में वसना) द्राङ्क्षति । दद्राङ्क्ष । ध्राङ्क्षति । दध्राङ्क्ष । ध्वाङ्क्षति । दध्वाङ्क्ष [चूष] पाने (चूषना) चूषति । चुचूष । चूषिता । चूषिष्यति । चूषिषति । चूषिषाति । चूषतु । अचूषत् । चूषेत् । चूष्यात् । अचूषीत् । अचूषिष्यत् [तूष] तुष्टौ (सन्तोष करना) तूषति । तुतूष [पूष] वृद्धौ (बढ़ना) पूषति । पुपूष । [मूष] स्तेये (चोरी) मूषति । मुमूष [लूष, रूष] भूषायाम् । (शोभा) लूषति । रूषति । लुलूष । रुरूष [शूष] प्रसवे (उत्पत्ति) शूषति । शुशूष [यूष] हिंसायाम् । यूषति । युयूष [जूष] च । जूषति । जुजूष [भूष] अलङ्कारे (गहना) भूषति । बुभूष । भूषिता । भूषिष्यति । भूषिषति । भूषिषाति । भूषतु । अभूषत् । भूषेत् । भूष्यात् । अभूषीत् अभूषिष्यत् [ऊष] रुजायाम् (रोग) ऊषति । ऊषाञ्चकार । ऊषाम्बभूव । ऊषामास [ईष] उञ्छे (उंछना) ईषति । ईषाञ्चकार । ईषाम्बभूष । ईषामास [कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष रिष] हिंसार्थाः । इन सब में शिष धातु अनिट् है । कषति । चकाष । चकषतुः । कषिता । कषिष्यति । काषिषति । काषिषाति । कषतु । अकषत् । कषेत् । कष्यात् । अकाषीत् । अकषीत् । अकषिष्यत् । खषति । चखाष । शेषति । शिशेष । शिशिषतुः । शिशेषिथ यहां (१४८) सूत्र के नियम से इट् हो जाता है नहीं तो प्राप्ति नहीं थी । शेष्टा । शेष्टारौ । शेष्टारः । शेक्ष्यति । शेक्षति । शेक्षाति । शेषति । शेषाति । शेषतु । अशेषत् । शेषेत् । शिष्यात् । अट्+शिष्+क्स+तिप्=अशिक्षत् । अशिक्षताम् । अशिक्षन् । अशिक्षः । अशिक्षतम् । अशिक्षत । अशिक्षम् ।

अशिक्षाव । अशिक्षाम । यहां च्लि के स्थान में क्स आदेश (२०७) से हो जाता है अशिक्ष्यत् । जषति । जजाष । जेषतुः । जेषुः । जषिता । जषिष्यति । जाषिषति । जाषिषाति । जषतु । अजषत् । जषेत् । जष्यात् । अजाषीत् । अजषीत् । झषति । जझाष । शषति । शशाष । शेषतुः । वषति । ववाष । ववषतुः (१२८) से एत्वाभ्यासलोप का निषेध होता है। मषति । ममाष । मेषतुः । रोषति । रुरोष । रेषति । रिरेष । ये दोनों धातु सेट् ही हैं परन्तु तकारादि अर्द्धधातुक में विशेष है ॥ २११ ॥

२१२—तीषसहलुभरुषरिषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४८ ॥

इषु, सह, लुभ, रुष और रिष धातुओं से परे जो तादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम विकल्प कर के हो । इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये है कि सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है उसका विकल्प विशेष विषय में किया है । रोषिता । रोष्टा । रोष्टारौ । रोष्टारः । रेषिता । रेष्टा । रेषिष्यति । रेषिषति । रेषिषाति । रेषतु । अरेषत् । रेषेत् । रिष्यात् । अरेषीत् । अरेषिष्यत् । [भष] भर्त्सने (धमकाना) भषति । बभाष । [उष] दाहे (जलन) ओषति । ओषतः । ओषन्ति ॥ २१२ ॥

२१३—उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ॥

उष, विद और जागृ धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके हो लिट् लकार परे हो तो वेद विषय को छोड़ के । यह बात सर्वत्र के लिये ध्यान में रखनी चाहिये कि जिन २ एध आदि धातुओं से आम् प्रत्यय किया है वहां २ सर्वत्र वेद में आम् प्रत्यय का निषेध है जैसे । एध्+एध्+एश् । इयेधे (१८३) इत्यादि प्रयोगों की योजना वैदिक प्रयोगों में समझ लेनी चाहिये । ओषाञ्चकार । उवोष । ऊषतुः । और वेद में भी । उवोष ही होगा । ओषिता । ओषिष्यति । ओषिषति ओषिषाति । ओषतु । औषत् । ओषेत् । उष्यात् । औषीत् । औषिष्यत् । [जिषु, विषु, मिषु,] सेचने (सींचना) जेषति । जिजेष । विष धातु अनिट् है । वेषति । विवेष । विवेषिथ । विवेषिव । विवेषिम । वेष्टा । वेक्ष्यति । वेक्षति । वेक्षाति । वेषति । वेषाति । वेषतु । अवेषत् । वेषेत् । विष्यात् । अविष्+क्स+तिप्=अविक्षत् । अविक्षताम् । अविक्षन् । अवेक्ष्यत् । [पुष] पुष्टौ । पुष धातु अनिट् कारिका में दिवादि गण का निर्देश किया है इस कारण यह सेट् है । पोषति । पुपोष । पोषिता । पोषिष्यति । पोषिषति । पोषिषाति । पोषतु । अपोषत । पोषेत् । पुष्यात् । अपोषीत् । अपोषिष्यत् [श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, प्लुषु] दाहे

श्रेषति । श्लेषति । शिश्रेष । शिश्लेष । प्रोषति । पुप्रोष । प्लोषति । पुप्लोष । श्लिष धातु भी अनिट् व्यवस्था में दिवादि गण का ही पढ़ा है [पृषु, वृषु, मृषु] सेचने पर्षति । वर्षति । मर्षति । पपर्ष । पपृषतुः । पपृषुः । पर्षिता । पर्षिष्यति । पर्षिषति । पर्षिषाति । पर्षति । पर्षाति । पर्षतु । अपर्षत् । पर्षत् । पर्ष्यात् । अपर्षात् । अपर्षिष्यत् [मृषु] सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । मृषु धातु के सहना और सींचना तथा पृषु, वृषु धातुओं के सींचना, हिंसा और संक्लेशन तीनों अर्थ हैं [घृषु] संघर्षे (घिसना) घर्षति । जघर्ष [हृषु] अलीके (झूठ) हर्षति । जहर्ष [तुस, ह्रस, ह्लस, रस] शब्दे । तोसति । तुतोस । तोसिता । तोसिष्यति । । तोसिषति । तोसिषाति । तोसतु । अतोसत् । तोसेत् । तुस्यात । अतोसीत् । अतोसिष्यत् । ह्रसति । जह्रास । ह्लसति । जह्लास । रसति । ररास । रेसतुः । रेसुः । रासिता । रसिष्यति । रासिषति । रासिषाति । रसतु । अरसत् । रसेत् । रस्यात् । अरसीत् । अरासीत् । अरसिष्यत् [लस] श्लेषणक्रीडनयोः (मिलना और खेलना) लसति । ललास । लेसतुः [घस्लृ] अदने (खाना) घसति । जघास । जघस्-अतुस् । इस अवस्था में ॥ २१३ ॥

२१४—गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ॥अ०॥६।४।९८॥

गम, हन, जन, खन और घस धातुओं के उपधा अकार का लोप हो अङ्भिन्न अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । यहां घकारस्थ अकार का लोप होकर (खरि च) सूत्र से घ् को (क्) करते समय (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ) सूत्र से अकार को स्थानिवत् होने से चर् आदेश न हो सके सो (न पदान्त०) सूत्र से चर्विधि में स्थानिवत् का निषेध होकर चर् होता है । पीछे षत्व होकर । जक्षतुः । जक्षुः । जघस्—थल् । इस अवस्था में ॥ २१४ ॥

२१५—उपदेशेऽत्वतः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६२ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् उपदेश में जो अकारवान् धातु है उस से परे जो थल् उस को इट् का आगम न हो । (१४८) सूत्र के नियम में लिट् मात्र में इट् प्राप्त है उस का विशेष विषय में यह अपवाद है । जघस्थ । और भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों को तास्वत्कार्य्य के नियम (१४९) से उपदेश में अकारवान् और अजन्तों को इडागम हो जाता है । जघसिथ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । घस्ता । घस्तारौ । घस्तारः । घस्—स्य—तिप् । इस अवस्था में ॥ २१५ ॥

२१६–सः स्यार्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४९ ॥

सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो सकार को तकार आदेश हो । यहां घस् के सकार को तकार होकर । घत्स्यति । घत्स्यतः । घत्स्यन्ति । घत्स्यसि । घात्सति । घात्साति । घत्सति । घत्साति । घसति । घसाति । घसतु । अघसत् । घसेत् । घस्यात् । ॥ २१६ ॥

२१७–पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५५ ॥

* दिवादि गण के पुष आदि, द्युतादि और लृ जिन का इत् गया हो उन धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश हो परस्मैपद विषय में कर्त्ता विषय में लुङ् लकार परे हो तो । यहां लृदित् घसृ धातु से अङ् हो कर । अट्+घस्+अङ्+तिप्= अघसत् । अघसताम् । अघसन् । अघसः । अघसतम् । अघसत । अघसम् । अघसाव । अघसाम । अघत्स्यत् । अघत्स्यताम् । अघत्स्यन् [जर्ज, चर्च, झर्झ,] परिभाषणहिंसातर्जनेषु (अधिक बोलना, हिंसा और धमकाना) जर्जति । जजर्ज । जर्जिता । जर्जिष्यति । जार्जिषति । जर्जिषाति । जर्जतु । अजर्जत् । जर्जेत् । जर्ज्यात् । अजर्जीत् । अजार्जिष्यत् । चर्चति । झर्झति । जझर्झ [पिसृ, पेसृ] गतौ । पेसति । पिपेस । पिपिसतुः । पिपेसतुः । पेसिता । पेसिष्यति । पेसिषति । पेसिषाति । पेसतु । अपेसत् । पेसेत् । पिस्यात् । अपेसीत् । अपेसिष्यत् [हसे] हसने (हँसना) इस धातु का एकार इत् जाता है । हसति । जहास । जहसतुः । हसिता । हसिष्यति । हासिषति । हासिषाति । हसतु । अहसत् । हसेत् हस्यात् । अहसीत् (१६२) अहसिष्यत् [णिश] समाधौ (समाहित होना) नेशति । निनेश । नेशिता । नेशिष्यति । नेशिषति । नेशिषाति । नेशतु । अनेशत् । नेशेत् । निश्यात् । अनेशीत् । अनेशिष्यत् [मिश, मश] शब्दे रोषकृते च (शब्द और रिष करना) मेशति । मशति । ममाश । मेशतुः । मशिता । मशिष्यति । माशिषति । माशिषाति । मशतु । अमशत् । मशेत् । मश्यात् । अमाशीत् । अमशीत् । अमशिष्यत् [शव] गतौ । शवति । शशाव । शेवतुः । अशावीत् । अशवीत् । अशविष्यत् [शश] प्लुतगतौ (कूद२ कर चलना) शशति । शशाश । शेशतुः । अशाशीत् । अशशीत् [शसु) हिंसायाम् । शसति । शशास । शशसतुः ।

* इस सूत्र में इस भ्वादि गण के पुषादि धातुओं का ग्रहण इसकारण नहीं होता कि पुषादि के अन्तर्गत द्युतादि धातु भी आ जाते फिर द्युतादि ग्रहण व्यापक से दिवादिगण के पुषादिकों का ग्रहण होता है ॥

(१२८) एत्वाभ्यास लोप का प्रतिषेध हो जाता है । शशसुः । शशसिथ । अशासी-त् । अशसीत् [शंसु] स्तुतौ (गुणों का वर्णन) शंसति । शशंस । अशंसीत् [चह] परिकल्कने (सर्वथा मूर्खपन) चहति । चचाह । चेहतुः । चेहुः । चाहिता । चहिष्यति । चाहिषति । चाहिषाति । चहतु । अचहत् चहेत् चह्यात् । अचहीत् (१६२) अचहि-ष्यत् । [मह] पूजायाम् (सत्कार) महति । ममाह । मेहतुः । अमहीत् [रह] त्यागे (छोड़ना) रहति । रराह । रेहतुः । रहिता । रहिष्यति । राहिषति । राहिषाति । रह-तु । अरहत् । रहेत् । रह्यात् । अरहीत् (१६२) अरहिष्यत् [रहि] गतौ । रंहति । ररं-ह । रंह्यात् [दृह, दृहि, बृह, बृहि] वृद्धौ । दर्हति । दृंहति । बर्हति । बृंहति । ददर्ह । ददृहतुः । दर्हिता । दर्हिष्यति । दर्हिषति । दर्हिषाति । दर्हतु । अदर्हत् । दर्हेत् । दृह्यात् । अदर्हीत् । अदर्हिष्यत् [बृहि] शब्दे च । बृंहति [बृहिर्] इत्येके । बर्हति । बबर्ह । अबृहत् (१३८) अबर्हीत् [तुहिर्, दुहिर्, उहिर्] अर्दने (गति और मांगना) तो-हति । तुतोह । तुतुहतुः । तोहिता । तोहिष्यति । तोहिषति । तोहिषाति । तोहतु । अ-तोहत् । तोहेत् । तुह्यात् । अतुहत् । अतोहीत् । अतोहिष्यत् । दोहति । दुदोह । अदुहत् । अदोहीत् । अनिट्व्यवस्था में जो दुह धातु पढ़ा है वह दिह धातु के सा-हचर्य से अदादि का समझना चाहिये । ओहति । उवोह । ऊहतुः । ओहिता । मा भवा-नुहत् । औहीत् । औहिष्यत् [अर्ह] पूजायाम् (सत्कार) अर्हति । आनर्ह । आन-र्हतुः । आनर्हुः । अर्हिता । अर्हिष्यति । अर्हिषति । अर्हिषाति । अर्हतु । आर्हत् । अ-र्हेत् । अर्ह्यात् । आर्हीत् । आर्हिष्यत् । इति घुषिरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः समाप्ताः । ये घुषिर् आदि ९५ धातु समाप्त हुए ॥

अथ क्रूपूपर्यन्ताः षड्विंशत्यात्मनेपादिनः । अब २६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [द्युत] दीप्तौ (प्रकाश होना) द्योतते । द्युत्-द्युत्-एश् । इस अवस्था में ॥ २१७ ॥

२१८–द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ॥ अ० ॥ ७ । ४।६७ ॥

द्युति और स्वापि धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो । इस सूत्र में णिच् प्रत्य-यान्त स्वापि धातु का ग्रहण है । सो णिजन्तप्रक्रिया में आवेगा । द्यु-द्युत्-एश् । य-हां प्रथम द्यु के यकार के स्थान में (इ) संप्रसारण होकर । द्-इ-उ-द्युत्-ए-श् ॥ २१८ ॥

२१९–संप्रसारणाच्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होवे । यहां

(३) संप्रसारण से परे उकार को पूर्वरूप होकर । दि+द्युत्+एश् = दिद्युते । दिद्युताते । दिद्युतिरे । द्योतितासे । द्योतिष्यते। द्योतिषतै । द्योतिषातै । द्योतताम्। अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ॥ २१९ ॥

२२०—द्युद्भ्यो लुङि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९१ ॥

द्युत आदि धातुओं से परे जो लुङ् लकार उस के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । ये द्युत आदि धातु सामान्य करके आत्मनेपदी हैं लुङ् में परस्मैपद किसी से प्राप्त नहीं इस कारण इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा है । फिर परस्मैपदविषय में अङ् होकर । अद्युतत् । अद्युतताम् । अद्युतन् । अद्युतः । अद्युततम् । अद्युतत । अद्युतम् । अद्युताव । अद्युताम । आत्मनेपद पक्ष में । अद्योतिष्ट । अद्योतिषाताम् । अद्योतिषत । अद्योतिष्यत । यहां से लेकर कृपू धातु पर्य्यन्त सब धातुओं में (२२०) (२१७) ये दोनों सूत्र लुङ लकार में लगा करेंगे [ष्विता] वर्णे (श्वेतवर्ण) इस धातु का आकार इत् संज्ञक होता है उस का फल कृदन्त में आवेगा । श्वेतते । शिश्विते । श्वेतितासे । श्वेतिष्यते । श्वेतिषतै । श्वेतिषातै । श्वेतताम् । अश्वेतत । श्वेतेत । श्वेतिषीष्ट । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट । अश्वेतिष्यत । [ञिमिदा] * स्नेहने (प्रीति) यहां (१५०) सूत्र से ञि की इत्संज्ञा और आकार भी इस धातु का इत् जाता है । मेदते । मिमिदे । मिमिदाते । मिमिदिरे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदिषतै । मेदिषातै । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमिदत् । अमेदिष्ट । अमेदिष्यत [ञिष्विदा] स्नेहनमोचनयोः (प्रीति और छोड़ देना) यहां भी पूर्ववत् ञि और आ इत् जाते हैं । स्वेदते । सिष्विदे । अस्विदत् । अस्वेदिष्ट । अस्वेदिष्यत [ञिक्ष्विदा] इत्येके । क्ष्वेदते । चिक्ष्विदे । अक्ष्विदत् । अक्ष्वेदिष्ट । [रुच] दीप्तावभिप्रीतौ च (प्रकाश और अत्यन्त प्रीति) रोचते । रुरुचे । रुरुचाते । रुरुचिरे । रोचितासे । रोचिष्यते । रोचिषतै । रोचिषातै । रोचताम् । अरोचत । रोचेत । रोचिषीष्ट । अरुचत् । अरोचिष्ट । अरोचिष्यत [घुट] परिवर्त्तने (सब ओर से वर्तना) घोटते । जुघुटे । घोटितासे । घो-

* इस धातु पर जो भट्टोजिदीक्षित ने (मिदेर्गुणः) सूत्र लगाया है सो अन्यथा व्यर्थ है क्योंकि यह सूत्र दिवादि गण के मिद धातु से श्यन् प्रत्यय के अपित् होने से (५१) गुण प्राप्त नहीं होता वहां लगता है । और काशिकाकार ने भी दिवादि गण के ही उदाहरण इस सूत्र पर दिये हैं । और लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन(एश्) में शित्करण सर्वदेशार्थ है गुण होने के लिये नहीं और यह बात कभी नहीं हो सकती कि जो अन्त में शित् हो उस को शित्कार्य न हों क्योंकि आनश्यादि को सार्वधातुक संज्ञा होती है । इस कारण एश् में भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती फिर यह सूत्र इस धातु पर लिखना अत्यन्त विरुद्ध है ॥

टिष्यते । घोटिषतै । घोटिषातै । घोटताम् । अघोटत । घोटेत । घोटिषीष्ट । अघुटत् । अघोटिष्ट । अघोटिष्यत [रुट,लुट, लुठ,उठ] उपघाते (मारना) रोटते । रुरुटे । लोटते । लुलुटे । लोठते । लुलुठे । ओठते । ऊठे । ऊठाते । ऊठिरे । अरुटत् । अरोटिष्ट । अलुटत् । अलोटिष्ट । अलुठत् । अलोठिष्ट । औठत् । औठिष्ट । [शुभ] दीप्तौ । शोभते । शुशुभे । शोभितासे । शोभिष्यते । शोभिषतै । शोभिषातै । शोभताम् । अशोभत । शोभेत । शोभिषीष्ट । अशुभत् । अशोभिष्ट । अशोभिष्यत । [क्षुभ] संचलने (चलायमान होना) क्षोभते । चुक्षुभे । अक्षुभत् । अक्षोभिष्ट । [णभ, तुभ] हिंसायाम् । नभते । नेभे । नेभाते । नेभिरे । नभितासे । नभिष्यते । नाभिषतै । नाभिषातै । नभताम् । अनभत । नभेत । नभिषीष्ट । अनभत् । अनभिष्ट । अनभिष्यत । अतुभत् । अतोभिष्ट [स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु] अवस्रंसने (गिरना) [ध्वंसु] गतौ च । स्रंसते । सस्रंसे । ध्वंसते । दध्वंसे । भ्रंसते । बभ्रंसे । लुङ् लकार में अङ् प्रत्यय के परे (१३९) सूत्र से नकार के अनुस्वार का लोप होकर । अस्रसत् । अस्रंसिष्ट । अध्वसत् । अध्वंसिष्ट । अभ्रसत् । अभ्रंसिष्ट [भ्रशु,भ्रंशु] अधःपतने (नीचे गिरना) भ्रशते । भ्रंशते । बभ्रशे । बभ्रंशे । भ्रशिताशे । भ्रशिष्यते भ्राशिषतै । भ्राशिषातै । भ्रशताम् । अभ्रशत । भ्रशेत । भ्राशिषीष्ट । अभ्रशत् २ । अभ्राशिष्ट । अभ्रंशिष्ट । अभ्राशिष्यत [स्रंभु] विश्वासे । स्रम्भते । सस्रम्भे । अस्रभत् । अस्रम्भिष्ट । [वृतु] वर्त्तने (वर्त्तना) वर्त्तते । वर्त्तेते । वर्त्तन्ते । वर्त्तसे । वर्त्तेथे । वर्त्तध्वे । वर्त्ते । वर्त्तावहे । वर्त्तामहे । ववृते । ववृताते । ववृतिरे । ववृतिषे । ववृताथे । ववृतिध्वे । ववृते । ववृतिवहे । ववृतिमहे । वर्त्तितासे ॥ २२० ॥

२२१-वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९२ ॥

वृतु आदि पांच धातुओं से परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । यहां लृट् लकार में परस्मैपद तिप् आदि होकर । वृत्-स्य -तिप् । इस अवस्था में इट् का आगम प्राप्त है इसलिये ॥ २२१ ॥

२२२-न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५९ ॥

वृतु आदि चार धातुओं से परे जो सकारादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न हो परस्मैपद विषय में । फिर (५१) से गुण हो कर । वर्त्स्यति । वर्त्स्यतः । वर्त्स्यन्ति । जिस पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय नहीं होते वहां । वर्त्तिष्यते । वर्तिष्येते । वर्तिष्यन्ते । वर्तिषतै । वर्तिषातै । वर्तताम् । वर्तेताम् । वर्तन्ताम् । अवर्तत । वर्तेत ।

वर्तिषीष्ट । अवृतत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत् । अवर्तिष्यत [वृधु] वृद्धौ (बढ़ना) [शृधु] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द होना) इन दोनों धातुओं में वृतु के समान साधुत्व जानो । वर्धते । वर्धेते । वर्धन्ते । ववृधे । वर्धितासे । वर्त्स्यति । यहां दन्त्योष्ठ वकार के होने से भकार (२०४) नहीं होता । वर्धिष्यते । वर्धिषतै । वर्धिषातै । वर्धताम् । अवर्धत । वर्धेत । वर्धिषीष्ट । अवृधत् । अवर्धिष्ट । अवर्त्स्यत् । अवर्धिष्यत । शर्धते । शशृधे । शर्त्स्यति । शर्धिष्यते । अशृधत् । अशर्धिष्ट । अशर्त्स्यत् । अशर्धिष्यत [स्यन्दू] प्रस्रवणे (झरना) यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक विषय में इट् का आगम विकल्प से (१४०) होता है। स्यन्दते। स्यन्देते । स्यन्दन्ते । सस्यन्दे । सस्यन्दाते । सस्यन्दिरे । सस्यन्दिषे । सस्यन्त्से । सस्यन्दाथे । सस्यन्दिध्वे । सस्यन्ध्वे । यहां (झरो झरि सवर्णे) इस सूत्र से न् से परे दकार का लोप विकल्प करके होता है। सस्यन्दे । सस्यन्दिवहे । सस्यन्दिमहे । सस्यन्द्वहे । सस्यन्न्महे । यहां दकार को अनुनासिक (यरोऽनुनासिके०) सूत्र से विकल्प करके होता है । स्यन्दिता । स्यन्दितारौ । स्यन्दितारः । स्यन्दितासे । स्यन्ता । यहां भी (झरो झरि०) सूत्र से दकार लोप होता है और लृट् में स्य प्रत्यय के परे परस्मैपद (२२१) हो के (१४०) सूत्र अन्तरङ्ग भी है तो भी उसके विकल्प को बाध के (२२२) सूत्र में चतुर्ग्रहण सामर्थ्य से परस्मैपद विषय में निषेध ही होता है । स्यन्त्स्यति । स्यन्दिष्यते । स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषतै । स्यन्दिषातै । स्यन्त्सतै । स्यन्त्सातै । स्यन्दताम् । अस्यन्दत । स्यन्देत । स्यन्दिषीष्ट । स्यन्त्सीष्ट । अट्+स्यन्द्+अङ्+तिप् (२२०) (२१७) (१३९)=अस्यदत् । अस्यदताम् । अस्यदन् । आत्मनेपद विषय में । अस्यन्दिष्ट । अस्यन्दिषाताम् । अनिट्पक्ष में । अस्यन्त । अस्यन्त्साताम् । अस्यन्त्सत । अस्यन्थाः । अस्यन्त्साथाम् । अस्यन्ध्वम् । अस्यान्त्सि । अस्यन्त्स्वहि । अस्यन्त्स्महि । अस्यन्त्स्यत् । अस्यन्दिष्यत । अस्यन्त्स्यत [कृपू] सामर्थ्ये (समर्थ होना) ॥ २२२ ॥

२२३-कृपो रो लः ॥ अ० ॥ ८ । २ । १८ ॥

कृप धातु के गुण हुए और ऋकारविशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकार आदेश होता है । यहां ऋकार में जितना अंश रेफ का है उस को ल होकर क्लृप् धातु होता है । फिर गुण (५१) होकर । कल्पते । कल्पेते । कल्पन्ते । चक्लृपे । चक्लृपाते । चक्लृपिरे । यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इडागम भी विकल्प करके होता है । चक्लृपिषे । चक्लृप्से । चक्लृपिध्वे । चक्लृब्ध्वे । चक्लृपिवहे । चक्लृब्वहे ।

चक्लृपिमहे । चक्लृम्महे । चक्लृब्महे ॥ २२३ ॥

२२४—लुटि च क्लृपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९३ ॥

लुट् लकार, स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो कृप् धातु से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प कर के होवें । यहां परस्मैपद पक्ष में ॥ २२४ ॥

२२५—तासि च कॢपः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७२ ॥

कृप् धातु से परे जो तास् और सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय उन को इट् का आगम न होवे परस्मैपद विषय में । कल्प्ता । कल्प्तारौ । कल्प्तारः । कल्प्तासि । कल्पितासे । कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते । कल्प्स्यते । कल्पिषतै । कल्पिषातै । कल्प्सतै । कल्प्सातै । कल्पताम् । अकल्पत । कल्पेत । कल्पिषीष्ट । कल्प्सीष्ट । अकॢपत् । अकल्पिष्ट । अकॢप्त (१४२) सकार का लोप होता है । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत । अकल्प्स्यत (वृत्) सम्पूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्च । ये द्युत आदि और वृतु आदि धातु समाप्त हुए ॥

अथ त्वरत्यन्ता आत्मनेपदिनः । अब त्वर धातुपर्यन्त १६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [घट] चेष्टायाम् । घटते । जघटे । जघटाते । घटितासे । घटिष्यते । घाटिषतै । घाटिषातै । घटताम् । अघटत । घटेत । घटिषीष्ट । अघटिष्ट । अघटिष्यत [व्यथ] भयसञ्चलनयोः (डरना और चंचल होना) व्यथते । व्यथेते । व्यथन्ते ॥ २२५ ॥

२२६—व्यथो लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६८ ॥

व्यथ धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिट् लकार परे हो तो । व्यथ् के (य्) को इ सम्प्रसारण होके (२१९) से पूर्वरूप एकादेश होता है । व्यथ्+व्यथ्+एश्= विव्यथे । विव्यथाते विव्यथिरे । व्यथितासे । व्यथिष्यते । व्याथिषतै । व्याथिषातै । व्यथताम् । अव्यथत । व्यथेत । व्यथिषीष्ट । अव्यथिष्ट । अव्यथिष्यत । [प्रथ] प्रख्याने (प्रसीद्धि) प्रथते । पप्रथे । अप्रथिष्ट [प्रस] विस्तारे । प्रसते । पप्रसे [म्रद] मर्दने (मलना) म्रदते । मम्रदे [स्खद] स्खदने (दौड़ना) स्खदते । चस्खदे [क्षजि] गतिदानयोः (गति और देना) क्षञ्जते । चक्षञ्जे । [दक्ष] गतिहिंसनयोः (गति और मारना) दक्षते । ददक्षे । दक्षितासे । दक्षिष्यते । दाक्षिषतै । दाक्षिषातै । दक्षताम् । अदक्षत । दक्षेत । दक्षिषीष्ट । अदक्षिष्ट । अदाक्षिष्यत [क्रप] कृपायां गतौ च । क्रपते । क्रपेते । क्रपन्ते । चक्रपे । [कदि, क्रदि, क्लदि] वैक्लव्ये वैकल्य इत्यन्ये

(विविध प्रकार की गति और संख्या) ये तीनों धातु तवर्गान्तों में परस्मैपदी आह्वान और रोदन अर्थ में लिख चुके हैं फिर इन का यहां लिखना मित्संज्ञा, अर्थभेद, और आत्मनेपद आदि के लिये है और इस प्रकरण (घट धातु से लेके फण, गतौ पर्यन्त) में बहुत ऐसे धातु लिखे हैं जिन में से किन्हीं को पूर्व लिख चुके कोई आगे के गणों में आवेंगे और बहुतेरे ऐसे भी हैं जो कहीं नहीं आवेंगे । मित् संज्ञा का गणसूत्र इसी प्रकरण में आगे लिखा है । कन्दते । क्रन्दते । क्लन्दते । चकन्दे । चक्रन्दे । चक्लन्दे । कन्दितासे । कन्दिष्यते । कन्दिषतै । कन्दिषातै । कन्दताम् । अकन्दत । कन्देत । कन्दिषीष्ट । अकन्दिष्ट । अकन्दिष्यत [कद, क्रद, क्लद] इत्यन्ये । कदते । क्रदते । क्लदते । चकदे । चक्रदे । चक्लदे । कदितासे । कदिष्यते । कादिषतै । कादिषातै । कदताम् । अकदत । कदेत । कादिषीष्ट । अकादिष्ट । अकादिष्यत । [ञित्वरा] सम्भ्रमे (सम्यक् भ्रान्ति) त्वरते । तत्वरे । त्वरिता । त्वरिष्यते । त्वारिषतै । त्वारिषातै । त्वरताम् । अत्वरत । त्वरेत । त्वरिषीष्ट । अत्वरिष्ट । अत्वरिष्यत । इति घटादयः षित उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः षोडश समाप्ताः । ये घट आदि १६ धातु षित्संज्ञक समाप्त हुए षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा ॥

अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः । अब फण धातु पर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं [ज्वर] रोगे । ज्वरति । जज्वार [गड] सेचने (सींचना) गडति । जगाड । जगडतुः । गडितासि । गडिष्यति । गाडिषति । गाडिषाति । गडतु । अगडत् । गडेत् । गड्यात् । अगाडीत् । अगडीत् । अगडिष्यत् । [हेड] वेष्टने (लपेटना) हेडति । जिहेड । यह धातु अनादर अर्थ में आत्मनेपदविषय में आ चुका है इस धातु की अनादर अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होगी वहां । हेडयति । और मित्संज्ञा में ह्रस्व होकर । हिडयति [वट, भट] परिभाषणे । वटति । ववाट । ववटतुः । वटितासि । वटिष्यति । वाटिषति । वाटिषाति । वटतु । अवटत् । वटेत् । वट्यात् । अवटीत् । अवाटीत् । अवटिष्यत् । भटति । बभाट [णट] नृतौ (नाचना) नटति । ननाट । यह धातु इसी अर्थ में परस्मैपदी आ चुका है फिर यहां पढ़ने से यही प्रयोजन है कि नृत्य में भी दो भेद हैं एक नाटक दूसरा नाचना । सो यहां नाचने अर्थ में मित्संज्ञा होती है [ष्टक] प्रतिघाते (मारना) स्तकति । तस्ताक [चक] तृप्तौ । चकति । चचाक । चेकतुः । चेकुः । अचाकीत् । अचकीत् [कखे] हसने । कखति । अकखीत् (१६२) [रगे] शङ्कायाम् । रगति । रराग । रेगतुः । रेगुः । रगिता । रगिष्यति । रागिषति । रागिषाति । रगतु । अरगत् । रगेत् । रग्यात् ।

अरगीत् । अरागिष्यत् । [लगे] सङ्गे (मिलना) लगति । अलगीत् । [ह्रगे, ह्लगे, षगे, ष्टगे] सम्बरणे (ढांकना) ह्रगति । ह्लगति । सगति । स्तगति । अह्रगीत् । अह्लगीत् । असगीत् । अस्तगीत् [कगे] नोच्यते । कग धातु की विशेष अर्थ में मित्संज्ञा नहीं कहते क्योंकि यह धातु सामान्यार्थवाची है । कगति । चकाग । अकगीत्। [अक, अग] कुटिलायां गतौ (टेढ़ा चलना) अकति । अगति [कण, रण] गतौ । कणति । चकाण । रणति । रराण । रेणतु । अकाणीत् । अकणीत् । अराणीत् । अरणीत् [चण, शण, श्रण] दाने च [शण] गतावित्यन्ये । किन्हीं के मत में शण धातु केवल गत्यर्थ ही है दानार्थ नहीं । चण और श्रण धातुओं के दान और गति दोनों अर्थ हैं [श्रथ, श्लथ, क्नथ, क्लथ] हिंसार्थाः । श्रथति । श्लथति । क्नथति । क्लथति [चन] च । चकार से हिंसा अर्थ का सम्बन्ध होता है। चनति । चचान। चेनतु। चनिता । चनिष्यति । चानिषति । चानिषाति । चनतु । अचनत् । चनेत् । चन्यात् । अचानीत् । अचनीत् । अचनिष्यत् [वनु] च नोच्यते । एक वनु धातु तनादि गण में भी पढ़ा है । परन्तु उस का पाठ यहां मित्संज्ञा के लिये नहीं इसी कारण इस के अपूर्व होने से इस का विशेष अर्थ यहां मित्संज्ञा प्रकरणमें नहीं कहते और तनादि गण का वनु धातु इसी प्रकरण में आगे पढ़ा है । वनति । ववान ।अवानीत् । अवनीत् [ज्वल] दीप्तौ । ज्वलति । जज्वाल । जज्वलतुः । जज्वलुः । अज्वालीत् (१०६) । अज्वलिष्यत् [ह्वल, ह्मल] सञ्चलने । ह्वलति। ह्मलति । जह्वाल । जह्माल । अह्वालीत् । अह्वलीत् । अह्मालीत् [स्मृ] आध्याने (प्राप्ति की इच्छापूर्वक स्मरण करना) यह धातु इसी गण में आगे चिन्ता अर्थ में लिखा है । इस के प्रयोग भी वहीं लिखे हैं । यहां आध्यान अर्थ में मित्संज्ञा होती है [दॄ] भये (डर) [नॄ] नये (नम्रता) ये दोनों धातु क्र्यादि गण में आवेंगे [श्रा] पाके (पकाना) यह अदादि गण का है । मारणतोषणनिशामनेषु [ज्ञा] (मारना, सन्तोष और प्रत्यक्ष ज्ञान) इन अर्थों में ज्ञा धातु की मित्संज्ञा है अन्यत्र नहीं । और यह धातु भी क्र्यादि गण का है [चलिः]कम्पने (कांपना) यह धातु पीछे आ चुका है [छदिः] ऊर्जने (बल, वा प्राणपोषण) यह चुरादि गण में आवेगा । जिह्वोन्मथने [लडिः] (जीभ चलाना) यह भी चुरादि का है [मदी] हर्षग्लेपनयोः (आनन्द और दीनता) यह दिवादि गण का है [ध्वन] शब्दे । यह इसी गण में आगे लिखा है [दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपयश्च] इन में ध्वन और रण दोनों धातु आ चुके । और दल धातु विशरण, वल

सम्बरण, स्खल संचलन और त्रपूष् लज्ज अर्थ में आ चुके हैं। और दो धातु आगे इसी गण म आवेंगे उसका गन्त त्पि निर्देश किया है [स्वन] अवतंसने । यह धातु शब्द अर्थ म आगे लिखा है ॥ घटादयो मितः ॥ घट चेष्टायां धातु से लेकर जितने धातु लिख चुके हैं उन सब की मित्संज्ञा होवे इस मित्संज्ञा का प्रयोजन णिजन्त तथा कर्मकर्तृ प्रक्रिया और णमुल् प्रत्यय में आवेगा।[जनी, जॄष्, क्नसु, रञ्जोऽमन्ताश्च] जनी, जॄष्, और रंज ये तीनों दिवादि गण क हैं। और क्नसु धातु यहां नवीन सामान्यार्थवाची पढ़ा ह। अम् जिस के अन्त में हो ऐसे क्रम्, जम्, गम्, रम्, नम् आदि सब गणों के धातु मित्संज्ञक होते हैं। क्नसति । चक्नास । क्नसिता । क्नसिष्यति । क्नासिषति । क्नासिषाति । क्नसतु । अक्नसत् । क्नसेत् । क्नस्यात् । अक्नासीत् । अक्नसीत् । अक्नासिष्यत् [ज्वल, ह्वल, ह्मल, नमामनुपसर्गाद्वा] इन में ज्वल, ह्वल, और ह्मल, धातु तो इसी मित्संज्ञा प्रकरण में लिख चुके हैं आर नम धातु अमन्त है इन सब की नित्य मित्संज्ञा प्राप्त है। उस का विकल्प होने से प्राप्तविभाषा ह, परन्तु ये धातु उपसर्ग से परे न हों इतना विशेष है [ग्ला, स्ना, वनु, वमाञ्च] अनुपसर्गपूर्वक ग्लै, स्ना, वनु और वम धातु की मित्संज्ञा विकल्प करके होवे, इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा यों है कि ग्ला, वनु और स्ना धातु की मित्संज्ञा प्राप्त नहीं और वम धातु की अमन्त होने से प्राप्त है उन दोनों का विकल्प किया है [न कम्यमिचमाम्] कम्, अम्, और चम्, धातुओं की मित्संज्ञा अमन्त होने से नित्य प्राप्त है सो न होवे [शमो दर्शने] शम धातु की दर्शन अर्थ में मित्संज्ञा न होवे। निशामयति [यमोऽपरिवेषणे] यम धातु की अपरिवेषण अर्थात् भोजन से अन्य अर्थ में मित्संज्ञा न होवे [स्खदिरवपरिभ्याञ्च] अव और परि उपसर्गों से परे जो स्खद धातु उस की मित्संज्ञा न होवे [फण] गतौ। फणति । पफाण ॥ २२६ ॥

२२७–फणां च सप्तानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२५ ॥

फण, राजृ, भ्राजृ, भ्राशृ, भ्लाशृ, स्यमु और स्वन इन सात धातुओं के अवर्ण को एकारादेश और अभ्यास का लोप विकल्प करके हो कित्संज्ञक लिट् और सेट् थल् परे हों तो। इन धातुओं को एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं इसलिये यह अप्राप्त विभाषा है। फेणतुः । फेणुः । पफणतुः । पफणुः । फेणिथ । पफणिथ । फणिता । फणिष्यति । फाणिषति । फाणिषाति । फणतु । अफणत् । फणेत् । फण्यात् ।

अफणीत् । अफाणीत् । अफणिष्यत् (वृत्) घटादयः समाप्ताः । ये घट आदि मित्-संज्ञक धातु समाप्त हुए ॥

[राजृ] दीप्तौ । उदात्तः स्वरितेत् । यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) होता और अन्यत्र परस्मैपद, इस प्रकार उभयपद के प्रयोग जानो । राजते । राजेते । राजन्ते । राजति । राजतः । राजान्ति । रेजे (२२७) रराजे । रराज । रेजतुः । रराजतुः । राजितासे । राजितासि । राजिष्यते । राजिष्यति । राजिषतै । राजिषातै । राजिषति । राजिषाति । राजतु । राजताम् । अराजत । अराजत् । राजेत । राजेत् । राजिषीष्ट । राज्यात् । अराजिष्ट । अराजीत् । अराजिष्यत । अराजिष्यत् [टुभ्राजृ, टुभ्राश्टृ, टुभ्लाशृ] दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेपदिनः । ये तीनों धातु आत्मनेपदी सेट् हैं । इन धातुओं के टु की इत्संज्ञा (१५०) भ्राजते । भ्रेजे (२२७) बभ्राजे । भ्राजितासे । भ्राजिष्यते । भ्राजिषतै । भ्राजिषातै । भ्राजताम् । अभ्राजत । भ्राजेत । भ्राजिषीष्ट । अभ्राजिष्ट । अभ्राजिष्यत । भ्राश तथा भ्लाश धातु से विकल्प करके श्यन् (१८८) पक्ष में शप् होता है । भ्राश्यते । भ्राश्येते । भ्राश्यन्ते । भ्राशते । भ्रेशे । बभ्राशे । भ्राशितासे । भ्राशिष्यते । भ्राशिषतै । भ्राशिषातै । भ्राश्यतै । भ्राश्यातै । भ्राशतै । भ्राशातै । भ्राश्यताम् । भ्राशताम् । अभ्राश्यत । अभ्राशत । भ्राश्येत । भ्राशेत । भ्राशिषीष्ट । अभ्राशिष्ट । अभ्राशिष्यत । भ्लाश्यते । भ्लाशते । भ्लेशे । बभ्लाशे ॥

अथ स्यमादयः परस्मैपदिनः षड्विंशतिः । अब स्यम आदि २६ (छब्बीस) धातु परस्मैपदी कहते हैं [स्यमु, स्वन, ध्वन] शब्दे । स्यमति । सस्याम । स्येमतुः । (२२७) सस्यमतुः । स्यमितासि । स्यमिष्यति । स्यामिषति । स्यामिषाति । स्यमतु । अस्यमीत् (१६२) अस्यमिष्यत् । स्वनति । स्वेनतुः । सस्वनतुः । अस्वानीत् । अस्वनीत् (१४४) यहां तक फणादि सात धातु जो (२२७) सूत्र में कहे हैं समाप्त हुए । ध्वनति । दध्वान । दध्वनतुः । ध्वनितासि । ध्वनिष्यति । ध्वानिषति । ध्वानिषाति । ध्वनतु । अध्वनत् । ध्वनेत् । ध्वन्यात् । अध्वानीत् । अध्वनीत् । अध्वनिष्यत् [षम, ष्टम] अवैकल्ये । (सुस्थिर होना) समति । ससाम । सेमतुः । असमीत् (१६२) स्तमति । तस्ताम । तस्तमतुः । अस्तमीत् । [ज्वल] दीप्तौ । ज्वलति । जज्वाल । अज्वालीत् (१९६) [चल] कम्पने (कांपना) चलति । चचाल । चेलतुः । चालितासि । चलिष्यति । चालिषति । चालिषाति । चलतु । अचलत् । चलेत् । चल्यात् । अचालीत् । (१९६) अचालिष्यत् । [जल] घातने (मारना) जलति । जजाल । जेलतुः ।

अजालीत् (१९६) [टल ट्वल] वैक्लव्ये (विरुद्ध चाल) टलति । टटाल । टेलतुः । ट्वलति । टट्वाल । टट्वलतुः । अटालीत् । अट्वालीत् । अट्वलिष्यत् [ष्ठल] स्थाने । स्थलति । तस्थाल । अस्थालीत् । [हल] विलेखने (खोदना वा जोतना] हलति । जहाल । अहालीत् । [णल] गन्धे । बन्धन इत्येके । नलति । ननाल । नेलतुः । अनालीत् । [पल] गतौ । पलति । पेलतुः । अपालीत् [बल] प्राणने धान्यावरोधे च (जीवन और धानों का रोकना) बलति । बबाल । बेलतुः । बेलुः । अबालीत् [पुल] महत्वे (बड़ा होना) पोलति । पुपोल । पुपुलतुः । अपोलीत् । [कुल] संस्त्याने बन्धुषु (भाई बन्धुओं का समूह) कोलति । चुकोल । चुकुलतुः । कोलितासि । कोलिष्यति । कोलिषति । कोलिषाति । कोलतु । अकोलत् । कोलेत् । कुल्यात् । अकोलीत् । अकोलिष्यत् । [शल, हुल, पतॢ] गतौ । शलति । शशाल । शेलतुः । शेलुः । अशालीत् । (१९६) होलति । जुहोल । अहोलीत् । पतति । पपात । पेततुः । पतितासि । पतिष्यति । पातिषति । पातिषाति । पततु । अपतत् । पतेत् । पत्यात् । इस पत धातु का ॢ इत् जाता है इस से अङ् (२१७) होकर ॥ २२७ ॥

२२८—पतः पुम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १९ ॥

अङ् परे हो तो पत धातु को पुम् का आगम होवे । पुम् (मित्) होने से अन्त्य अच् पकार से परे होता है । अट्+पपुम्त्+अङ्+तिप्=अपप्तत् । पुम् में से उम् भाग की इत्संज्ञा होती है । अपप्तताम् । अपप्तन् । अपप्तः । अपप्ततम् । अपप्तत । अपप्तम् । अपप्ताव । अपप्ताम । अपतिष्यत् [क्थे] निष्पाके (अच्छे प्रकार पकाना) क्थति । चक्काथ । एदित् होने से । अक्थीत् । (१६२) [मथे] विलोडने । मथति । ममाथ । मेथतुः । मथिता । मथिष्यति । माथिषति । माथिषाति । मथतु । अमथत् । मथेत् । मथ्यात् । अमथीत् । अमथिष्यत् [टुवम्] उद्गिरणे (उगिलना) टु इत् (१५०) वमति । ववाम । ववमतुः (१२८) एत्वाभ्यास लोप का निषेध । वमिता । वमिष्यति । वामिषति । वामिषाति । वमतु । अवमत् । वमेत् । वम्यात् । अवमीत् (१६२) अवमिष्यत् । [भ्रमु] चलने । यहां (१८८) से विकल्प करके श्यन् होता है । भ्राम्यति । भ्रमति ॥ २२८ ॥

२२९—वा जॄभ्रमुत्रसाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२४ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो जॄ, भ्रमु और त्रस धातुओं के अभ्यासका लोप

और इन को एकारादेश विकल्प करके होवे। इन धातुओं में एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस कारण यहां अप्राप्तविभाषा है। बभ्राम। भ्रेमतुः। बभ्रमतुः। बभ्रमुः। अभ्रमीत् [क्षर] संचलने (अच्छे प्रकार चलना) क्षरति। चक्षार। चक्षरतुः। क्षरितासि। क्षरिष्यति। क्षारिषति। क्षारिषाति। क्षरतु। अक्षरत्। क्षरेत्। क्षर्यात्। अक्षारीत् (१६६) अक्षरिष्यत् ॥

इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः समाप्ताः ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ। अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं। उन में सह धातु सेट् और रमु अनिट् है [षह] मर्षणे (सहना)। सहते। सहेते। सहन्ते। सेहे। सेहाते। सहिता ॥ २२९ ॥

२३०—सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ अ० ॥ ६। ३। ११२ ॥

सह और वह धातु के अवर्ण को ओकार आदेश होवे ढकार का लोप हुआ हो तो। यहां (२१२) सूत्र से इट् के निषेध पक्ष में लुट् में तास् प्रत्यय के परे सह के हकार को ढ (२०३) और ढलोप (२०६) से होकर। सह्+तास्+डा = सोढा। सोढारौ। सोढारः। सोढासे। सोढासाथे। सोढाध्वे। सोढाहे। सोढास्वहे। सोढास्महे। सहिष्यते। साहिषतै। साहिषातै। सहताम्। असहत। सहेत। साहिषीष्ट। असहिष्ट। असाहिष्यत [रमु] क्रीडायाम् (खेलना) यह धातु अनिट् है। रमते। रमेते। रमन्ते। रेमे। रेमाते। रेमिरे। रेमिषे। रन्तासि। रंस्यते। रांसतै। रांसातै। रमताम्। अरमत। रमेत। रंसीष्ट। अरंस्त। अरंसाताम्। अरंस्यत ॥

अथ कसन्ताः सप्त परस्मैपदिनः [षद्लृ] विशरणगत्यवसादनेषु (मारना, गति और क्लेश होना) ॥ २३० ॥

२३१—पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ॥ अ० ॥ ७। ३। ७८ ॥

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, ऋ, सृ, शद और सद धातुओं को पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय और सीद आदेश यथासंख्य करके होवें शित् प्रत्यय परे हों तो। यहां शप् के परे सद को सीद होकर। सीदति। सीदतः। सीदन्ति। ससाद। सेदतुः। सेदुः। यह धातु अनिट् है। सेदिथ (१४९) स-

सत्थ (२१५) सेदथुः । सेद । ससाद । सेदिव । सेदिम । सत्ता । सत्तारौ । सत्तारः । सत्तासि । सत्स्यति । सात्सति । सात्साति । सत्सति । सत्साति । सीदति । सीदाति । सीदतु । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । लृदित् होने से अङ् (२१७) असदत् । असदताम् । असदन् । असदः । असदतम् । असदत । असदम् । असदाव । असदाम । असत्स्यत् [शद्लृ] शातन (तीक्ष्णता होनी) ॥ २३१ ॥

२३२-शदेः शितः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६० ॥

शित् प्रत्ययविषयक शद धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों (जिन लकारों में शप् होता है वहां) । यह सूत्र परस्मैपद का अपवाद है । शीय (२३१) आदेश । शीयते । शीयेते । शीयन्ते । शीयसे । शशाद । शेदतुः । शेदुः । शेदिथ । शशत्थ (१४९ । २१५) शत्तासि । शत्स्यति । शात्सति । शात्साति । शत्सति । शत्साति । शीयतै । शीयातै । शीयते । शीयाते शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शद्यात् । लृदित् होने से अङ् (२१७) अशदत् । अशदताम् । अशदन् । अशत्स्यत् । [क्रुश] आह्वाने रोदने च (बुलाना और रोना) क्रोशति । चुक्रोश । चुक्रुशतुः । चुक्रुशुः । चुक्रोशिथ (१४८) सूत्र के नियम से इट् । क्रुश—तास्—डा । यहां ॥ २३२ ॥

२३३-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३६ ॥

व्रश्च, भ्रस्ज, सज, मृज, यज, राज, भ्राज और छकारान्त शकारान्त धातुओं के अन्त्य वर्ण का ष आदेश होवे झल् परे हो वा पदान्त में । इस सूत्र में राज और भ्राज धातु का ग्रहण पदान्त में षत्व होने के लिये है क्योंकि इन दोनों के सेट् होने से झलादि आर्द्धधातुक में इट् के व्यवधान में प्राप्ति नहीं होती । यहां प्रकृत में शान्त क्रुश धातु के शकार को मूर्द्धन्य और (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से तास् के तकार को टकार होकर । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रुश्+स्य+ति = क्रोक्ष्यति (२०५) इसी प्रकार लेट् में जानो । क्रुश्+स्+अट्+तिप् = क्रोक्षति । क्रोक्षाति । क्रोशति । क्रोशाति । क्रोशतु । अक्रोशत् । क्रोशेत् । क्रुश्यात् । अट्+क्रुश्+क्स+तिप् = अक्रुक्षत् (२०७) अक्रुक्षताम् । अक्रुक्षन् । अक्रुक्षः । अक्रोक्ष्यत् । ये षद् आदि तीन धातु अनिट् थे [कुच] सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु (छूना, टेढ़ाई, रोक रखना और खोदना) कोचति । चुकोच । चुकुचतुः । कोचिता । कोचिष्यति । कोचिषति । कोचिषाति । कोचतु ।

अकोचत् । कोचेत् । कुच्यात् । अकोचीत् । अकोचिष्यत् [बुध] अवगमने (ज्ञान होन) बोधति । बुबोध । बुबुधतुः । बुबुधुः । बोधिता । बोधिष्यति । बोधिषति । बोधिषाति । बोधतु । अबोधत् । बोधेत् । बुध्यात् । अबोधीत् । अबोधिष्यत् । [रुह] बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना) रोहति । रुरोह । रुरुहतुः । यह धातु भी अनिट् है । रुह्+तास्+डा = रोढा (२०३) (१४१) और (ष्टुना ष्टुः) (२ ६) रोढारौ । रोढारः । रोढासि । रोह्+स्य+ति = रोक्ष्यति (२०३) (२०५) रोक्ष्यतः रोक्ष्यन्ति । रोक्षति । रोक्षाति । रोहति । रोहाति । रोहतु । अरोहत् । रोहेत् । रुह्यात् । अट्+रुह्+क्स+तिप् = अरुक्षत् (२०७) अरुक्षताम् । अरुक्षन् । अरोक्ष्यत् [कस] गतौ । कसति । चकास । चकसतुः । कसितासि । कसिष्यति । कासिषति । कासिषाति । कसतु । अकसत् । कसेत् । कस्यात् । अकासीत् । अकसीत् । अकसिष्यत् [वृत्] ज्वलादिगणः समाप्तः । ज्वल दीप्तौ धातु से लेकर यहांतक ज्वलादि गण कहाता है । इस का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । और ये पद आदि परस्मैपद सात धातु समाप्त हुए ॥

अथ गूहत्यन्ताः स्वरितेतोऽष्टत्रिंशत् । अब गुहू पर्यन्त स्वरितेत् (जिन में क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है वे उभयपदी) ३८ (अड़तीस) धातु कहते हैं [हिक्क] अव्यक्ते शब्दे । हिक्कते । हिक्कति [अञ्चु] गतौ याचने च (गति और मांगना) अञ्चते । अञ्चति । आनञ्चे । आनञ्च । अच्यात् (१३९) [अचु] इत्येके । अचते । अचति । आचे । आच । अचितासे । अचितासि । आचिष्यत । अचिष्यति । आचिषत । आचिषात । आचिषति । आचिषाति । अचताम् । अचतु । आचत । आचत् । अचेत । अचेत् । अचिषीष्ट । अच्यात् । आचिष्ट । आचीत् । आचिष्यत् । आचिष्यत [अचि] इत्यपरे । इस में इतना ही भेद है कि इदित् होने से । अञ्च्यात् (१३९) नलोप नहीं होता [डुयाचृ] याच्ञायाम् (मांगना) याचते । याचति । ययाचे । ययाच । याचितासे । याचितासि । याचिष्यते । याचिष्यति । याचिषतै । याचिषातै । याचिषति । याचिषाति । याचताम् । याचतु । अयाचत । अयाचत् । याचेत । याचेत् । याचिषीष्ट । याच्यात् । अयाचिष्ट । अयाचीत् । अयाचिष्यत । अयाचिष्यत् [रेटृ] परिभाषणे (बहुत बोलना) रेटते । रेटति । रिरेटे । रिरेट [चते,चदे] याचने । चतते । चदते । चतति । चदति । चेते । चेदे । चचात । चेततुः । अचतीत् (१६२) अचदीत् । [प्रोथृ] पर्य्याप्तौ (सामर्थ्य) प्रोथते । प्रोथति । पुप्रोथे । पुप्रोथ [मिदृ,मेदृ] मेधाहिंसनयोः (तीक्ष्ण बुद्धि और मारना) मेदते । मेदति । मिमिदे । मिमेदे । मिमेद ।

मिमिदतुः । मिमेदतुः । [मिधृ,मेधृ] सङ्गमे च (मेल करना) और चकार से पूर्वोक्त दोनों अर्थों का समुच्चय जानो । मेधते । मेधति । मिमिधे । मिमेधे । मिमेध । मिमिधतुः । मिमेधतुः [मिथृ,मेथृ] मेधाहिंसनयोरित्येके । मेथते । मेथति [णिदृ, णेदृ) कुत्सासन्निकर्षयोः (निन्दा और समीप होना) नेदते । नेदति । नेदतः । निनिदे । निनेदे । निनिदतुः । निनेदतुः । [शृधु,मृधु] उन्दने (गीलापन) शर्धते । मर्धते । शर्धति । मर्धति । शशृधे । शशृधतु [बुधिर्] बोधने (बोध होना) बोधते । बोधति । अबोधिष्ट । यह आत्मनेपदविषय में (१६४) सूत्र से जन धातु के साहचर्य से दिवादि के बुध का ग्रहण होता है इसलिये चिण् न हुआ। अबुधत् । इरित् होने से अङ् (१६८) अबोधीत् । [उबुन्दिर] निशामने (सुनाना) इस धातु में उ और इर् भाग की इत् संज्ञा हो जाती है । बुन्दते । बुन्दति । बुबुन्दे । बुबुन्दतुः । अबुन्दिष्ट । अबुदत् (१३८) (१३९) अबुन्दीत् [वेणृ] गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु (गति, ज्ञान, चिन्ता और वाजों (ढोलआदि) का ग्रहण करना) [वेनृ] इत्येके । वेणते । वेनते । वेणति । वेनति । विवेने । विवेणे । विवेणतुः । वेणितासि । वेणितासे । वेणिष्यते । वेणिष्यति । वेणिषतै । वेणिषातै । वेणिषति । वेणिषाति । वेणताम् । वेणतु । अवेणत । अवेणत् । वेणेत । वेणेत् । वेण्यात् । वेणिषीष्ट । अवेणिष्ट । अवेणीत् । अवेणिष्यत । अवेणिष्यत् [खनु] अवदारणे (खोदना) खनति । खनते । चखने । चखान । अतुस् में उपधालोप (२१४) चख्नतुः । चख्नुः । खनितासे । खनितासि । खनिष्यते । खनिष्यति । खनिषतै । खनिषातै । खनिषति । खनिषाति । खनताम् । खनतु । अखनत । अखनत् । खनेत । खनेत् । खनिषीष्ट ! खन्+यासुट्+सुट्+तिप् (१८५) न् को आकार विकल्प से होकर=खायात् । खन्यात् । अखनीत् । अखानीत् (१४४) अखनिष्ट । अखनिष्यत । अखनिष्यत् । [चीवृ] आदानसंवरणयोः । (ग्रहण, आच्छादन) चीवते । चीवति । चिचीवे । चिचीव । [चायृ] पूजानिशामनयोः (सत्कार और सुनाना) चायते । चायति । चचाये । चचाय। यहां वेद में कुछ विशेष है ॥ २३३ ॥

२३४—चायः की ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३५ ॥

चायृ धातु को वेद में बहुल करके की आदेश होवे। यहां द्विर्वचन होने से प्रथम ही अनेकाल् होने से चाय्मात्र के स्थान में की होकर पश्चात् द्विर्वचन होता है।

क्री+क्री+एश्=चिक्रिये । चिक्रियतुः । चिक्रियुः। चचाय । बहुलग्रहण से कहीं होता है कहीं नहीं भी होता [व्यय] गतौ । व्ययते । व्ययति । वव्यये । वव्याय । यकारान्त होने से वृद्धि का निषेध (१६२) अव्ययीत् । अव्ययिष्ट । [दाशृ] दाने (देना) दाशते। दाशति । ददाशे। ददाश। दाशितासे । दाशितासि। दाशिष्यते । दाशिष्यति । दाशिषतै । दाशिषातै । दाशिषति। दाशिषाति । दाशताम् । दाशतु । अदाशत । अदाशत्। दाशेत दाशेत्। दाशिषीष्ट। दाश्यात्। अदाशिष्ट। अदाशीत्। अदाशिष्यत। अदाशिष्यत्। [भेषृ] भये (डर) गतावित्येके । भेषति। भेषते। बिभेषे । बिभेष [भ्रेषृ, भ्लेषृ] गतौ । भ्रेषते । भ्रेषति । भ्लेषते । भ्लेषति [अस] गतिदीप्त्यादानेषु (गति, प्रकाश और लेना) असते असति । आस । आसतुः । आसुः । आसे। आसाते । आसिरे [अष] इत्येके । किन्हीं के मत में पूर्वोक्त दन्त्य सकारान्त धातु नहीं मूर्द्धन्य षकारान्त है। अषति । अषते । [स्पश] बाधनस्पर्शनयोः (दुःख देना और स्पर्श करना) स्पशति। स्पशते। पस्पशे। पस्पाश (१२४) अस्पशिष्ट । अस्पाशीत् । अस्पशीत् [लष] कान्तौ (इच्छा) लष्यति । लषति । लषते । लष्यते (१८८) श्यन् । ललाष । लेषतुः । लेषुः । लेषे । लेषाते। लेषिरे। लषितासे। लषितासि। लाषिष्यते। लषिष्यति। लाषिषतै । लाषिषातै। लाषिषति। लाषिषाति। लषताम्। लषतु। अलषत्। लषेत्। लष्यात्। लाषिषीष्ट। अलषिष्ट। अलाषीत्।अलषीत्। अलषिष्यत। अलषिष्यत् । [चष] भक्षणे (खाना) चषति। चषते। चेषतुः। चेषे [छष] हिंसायाम् । छषति । छषते। चच्छषतुः । चच्छषे [झष] आदानसम्वरणयोः (लेना, आच्छादन) झषति । झषते । जझाष । जझषे । (भ्रक्ष, भ्लक्ष] अदने । भ्रक्षति । भ्रक्षते । भ्लक्षति । भ्लक्षते। बभ्रक्ष । बभ्रक्षे [भक्ष] इत्येके । भक्षति । भक्षते [दासृ] दाने । दासति । दासते। ददास। ददासे [माहृ] माने (तोलना) माहति । माहते । ममाह । ममाहे । अमाहिष्ट । अमाहीत् । (गुहू) सम्वरणे (आच्छादन करना) गुह्—शप्—तिप् । यहां ॥ २३४ ॥

२३५—ऊदुपधाया गोहः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८९ ॥

गुण का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो गुह धातु की उपधा को ऊकार आदेश होवे। इस सूत्र में गुण किये गुह का ग्रहण इसलिये किया है कि जहां इस को गुण होता है वहीं ऊकार होवे अन्यत्र नहीं। ऊकार होने के पश्चात् लघूपध के न होने से गुण नहीं होता। गूहति। गूहत। गूहन्ति । गूहते । गूहेते । गूहन्ते । जुगूह । जुगुहतुः । जुगुहुः । जुगुहिथ । जुगोढ (२०३)(१४१)(२०६) जुगुहथुः । जुगुह । जुगूह । जुगुहिव । जुगुह्व। जुगुहिम । जुगुह्म ।

जुगुहे । जुगुहाते । जुगुहिरे । जुगुहिषे । जुगुह् + से=जुघुक्षे (२०३) (२०४) (२०५) जुगुहाथे । जुगुहिध्वे । जुगुहिढ्वे । जुघुढ्-ढ्वे । यहां प्रथम ढकार का लोप (२०६) होकर ॥ २३५ ॥

२३६-ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहां रेफ और ढकार का लोप हुआ हो वहां पूर्व अण् को दीर्घ होवे । यहां घु के उकार को दीर्घ होकर । जुघूढ्वे । जुगूह्वे । जुगुहिवहे । जुगुह्वहे । जुगुहिमहे । जुगुह्महे । गूहितासि । गूहितासे । अनिट् पक्ष में । गुह्+तास्+डा=गोढा । यहां अजादि प्रत्यय के न होने से उपधा को ऊकार (२३५) नहीं होता । गोढारौ । गोढारः । गोढासि । गोढासे । गूहिष्यति । गूहिष्यते । घोक्ष्यति । घोक्ष्यतः । घोक्ष्यन्ति । घोक्ष्यते । गूहिषति । गूहिषाति । घोक्षति । घोक्षाति । गूहति । गूहाति । गूहिषतै । गूहिषातै । घोक्षतै । घोक्षातै । गूहतै । गूहातै । गूहताम् । गूहतु । अगूहत । अगूहत् । गूहेत । गूहेत् । गूहिषीष्ट । अनिट् पक्ष में । गुह्+सीयुट्+सुट्+त (२०३ । २०४ । २०५ । ५६ । १६३ । ४५)=घुक्षीष्ट । घुक्षीयास्ताम् । घुक्षीरन् । गूहिषीढ्वम् । गूहिषीध्वम् । घुक्षीध्वम् । गुह्यात् । अगूहिष्ट । अगूहिषत । अगूहीत् । और अनिट् पक्ष में । अट्-गुह्-क्स-त । इस अवस्था में ॥ २३६ ॥

२३७-लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७३ ॥

आत्मनेपदविषय में दन्त्य अक्षर परे हो तो दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं से परे जो क्स प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे प्रत्ययमात्र का लुक् और लोप अन्त्य अल् के स्थान में होता है । यहां दन्त्य अक्षर त, ध्वम् और थास् के परे क्स का लुक् होता है । अट्+गुह्+क्स+त (२३७ । २०३ । (१४१) ष्टुत्व और (२३६)=अगूढ । अघुक्षत । अघुक्षाताम् (२०८) अघुक्षन्त । अगुह् + क्स + थास् (२३७ । २०३ । १४१)=अगूढाः । अघुक्षथाः । अघुक्षाथाम् । अगुह् + क्स+ध्वम् (२३७ । २०३ । २०४ । २०६ । २३६)=अघूढ्वम् । अघुक्षि । अघुक्षावहि । अघुक्षामहि । अगूहिष्यत । अगूहिष्यत् । अघोक्ष्यत । अघोक्ष्यत् । इति हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः समाप्ताः । ये हिक्क आदि अड़तीस उभयपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथाजन्ता उभयपदिनः पञ्च । अब अजन्त उभयपदी पांच धातु कहते हैं [श्रिञ्] सेवायाम् (सेवा करना) यह धातु सेट् है । ञ् की इत्संज्ञा होने से (१०३) उभयपद

इसी प्रकार सर्वत्र ञित् धातुओं से उभयपद जानो । श्रि + शप् + तिप् (२१) गुण= श्रयति । श्रयतः । श्रयन्ति । श्रयसि । श्रयते । श्रयेते । श्रयन्ते । शिश्राय । शिश्रि-यतुः (१५६) शिश्रिये । श्रयितासि । श्रयितासे । श्रयिष्यति । श्रयिष्यते । श्रायिष-ति । श्रायिषाति । श्रयति । श्रयाति । श्रायिषते । श्रायिषातै । श्रयतु । श्रयताम् । अ-श्रयत् । अश्रयत् । श्रयेत् । श्रयेत । श्रीयात् (१६०) दीर्घ । श्रयिषीष्ट । अशिश्रियत् (१७६) चङ् (१८०) द्वित्व (१५९) इयङ् । अशिश्रियताम् । अशिश्रियन् । अशिश्रियः । अशिश्रियत । अशिश्रियेताम् । अशिश्रियन्त । अश्रयिष्यत् । अश्रयिष्य-त [भृञ्] भरणे (धारण और पोषण) गुण होकर । भरति । भरते । बभा-र । बभ्रतुः । बभ्रुः । यहां यणादेश होता है विशेष नियम के होने से सामान्य लिट् में इट् का निषेध (१४८) भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) और अन्य ऋषियों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) होकर । बभर्थ । बभ्रथुः । ब-भ्र । बभार । बभर । बभृव । बभृम । बभ्रे । बभ्राते । बभ्रिरे । बभृषे । बभृढ्वे । बभृवहे । बभृमहे । भर्त्तासि । भर्त्तासे ॥ २३७ ॥

२३८—ऋद्धनोः स्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ ७० ॥

ह्रस्व ऋकारान्त और हन धातु से परे जो स्य वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम होवे । भरिष्यति । भरिष्यते । भार्षति । भार्षाति । भरति । । भराति । भार्षतै । भार्षातै । भरतु । भरताम् । अभरत् । अभरत । भरेत् । भरेत ॥ २३८ ॥

२३९—रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २८ ॥

श, यक् और यकारादि कित् ङित् आर्द्धधातुक लिङ् लकार परे हो तो ऋकारा-न्त अङ्ग को रिङ् आदेश हो । ङित् होने से अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है । और यह सूत्र रीङ्विधान का अपवाद है । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भ्रियासुः । आत्मनेपदविषय में ॥ २३९ ॥

२४०—उश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णान्त धातु से परे आत्मनेपदविषय में जो झलादि लिङ् और सिच् सो कित्वत् हों । कित् होने से गुण वृद्धि का निषेध (४५) होकर । भृषीष्ट । भृषीया-स्ताम् । भृषीरन् । भृषीष्ठाः । भृषीयास्थाम् । भृषीढ्वम् । भृषीय । भृषीवहि । भृषीमहि । अभार्षीत् (१५८) वृद्धि । अभार्ष्टाम् । अभार्षुः । अभार्षीः । अभार्ष्टम् । अभार्ष्ट ।

अभार्षम् । अभार्ष्व । अभार्ष्म । आत्मनेपदविषय में सिच् कित्वत् (२४०) होकर अट्-भृ-सिच्-त । इस अवस्था में ॥ २४० ॥

२४१-ह्रस्वादङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । २७ ॥

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उस का लोप होवे झल् परे हो तो । अभृत । अभृषाताम् । यहां झलादि प्रत्यय के न होने से सिच् का लोप नहीं होता । अभृषत । अभृथाः । अभृषाथाम् । अभृढ्वम् । अभृषि । अभृष्वहि । अभृष्महि । अभरिष्यत् (२३८) इट् । अभरिष्यत [हृञ्] हरणे (पहुंचाना, ग्रहण, चोरी और नाश करना आदि) [धृञ्] धारणे (धारण करना) इन दोनों धातुओं का भृञ् धातु के समान साधुत्व जानो । हरति । हरते । जहार । जह्रतुः । जहर्थ । जहार । जहर । जह्व । जह्म । जह्रे । जह्राते । जहृषे । जहृढ्वे । जहृवहे । हर्त्तासि । हर्त्तासे । हरिष्यति (२३८) इट् । हरिष्यते । हार्षति । हार्षाति । हार्षते । हार्षाते । हरतु । हरताम् । अहरत् । अहरत । हरेत् । हरेत । ह्रियात् (१३९) रिङ् । हृषीष्ट (२४०) कित्वत् । हृषीढ्वम् । अहार्षीत् (१५८) वृद्धि । अहृत (२४१) सिच् लोप । अहृषाताम् । अहृषत । अहारिष्यत् । अहरिष्यत । धरति । दधार । और (१६१) सूत्र में तुजादि धातु सामान्य करके लिये जाते हैं जिन में वैदिक प्रयोगों में अभ्यास को दीर्घादेश देख पड़े वे सब तुजादि गणस्थ जानो । इस कारण । दाधार । ऐसा भी प्रयोग वेद में होता है । दध्रतुः । दधर्थ । दध्रे । दधृषे । धर्त्तासि । धर्त्तासे । धरिष्यति । धरिष्यते । धार्षते । धार्षाते । धार्षते । धार्षाते । धरतु । धरताम् । अधरत् । अधरत । धरेत् । ध्रियात् । धृषीष्ट । धृषीढ्वम् । अधार्षीत् । अधृत । अधृषाताम् । अधृषत । अधृढ्वम् । अधरिष्यत् । अधारिष्यत । [णीञ्] प्रापणे (ले चलना) नयति । नयते । निनाय । नी+नी+अतुस्=निन्यतुः (१८६) यण् । निन्युः । निनयिथ (१४९) निनेथ (१८७) निन्यथुः । निन्य । निनाय । निनय । निन्यिव । निन्यिम । निन्ये । निन्याते । निन्यिरे । नेतासि । नेतासे । नेष्यति । नेष्यते । नैषति । नैषाति । नयति । नयाति । नैषते । नैषाते । नेषते । नैषाते । नेषते । नेषाते । नयते । नयाते । नयतु । नयताम् । अनयत् । अनयत । नयेत् । नयेत । नीयात् । नीयास्ताम् । नेषीष्ट । अनैषीत् । अनेष्ट । अनेषाताम् । अनेष्यत् । अनेष्यत । भरत्यादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः ॥

अथाजन्ताः परस्मैपदिनः । अब अजन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [धेट्] पाने (पीना) ट् की इत्संज्ञा और एकार को अय् आदेश होकर । धे+शप्+तिप्=धयति । धयतः । धयन्ति ॥ २४१ ॥

२४२—आदेच उपदेशेऽशिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४५ ॥

अशित् अर्थात् आर्द्धधातुकविषय में उपदेश में जो एजन्त धातु उस को आकार होवे। आकारान्त धातु सब अनिट् हैं। धा—णल्। इस अवस्था में ॥ २४२ ॥

२४३—आत औ णलः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३४ ॥

आकारान्त धातु से परे जो णल् उस को औकार आदेश होवे। धा—औ। द्वित्व हो कर। दधौ। धा—अतुस्। यहां ॥ २४३ ॥

२४४—आतो लोप इटि च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६४ ॥

अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक और इट् परे हों तो आकारान्त अङ्ग का लोप होवे। इस लोप के पहिले द्वित्व की प्राप्ति तो है फिर सब विधियों से लोपविधि के अति बलवान् होने से प्रथम लोप ही होता है फिर एकाच् के न होने से द्वित्व (३४) नहीं प्राप्त है इसलिये ॥ २४४ ॥

२४५—द्विर्वचनेऽचि ॥ अ० ॥ १ । १ । ५९ ॥

द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अच् के स्थान में जो आदेश है सो स्थानीरूप हो जावे। यहां रूपातिदेश मानने से आकार का पुनरागमन होकर द्विर्वचन होता है। धा+धा+अतुस्=दधतुः। यहां द्विर्वचन होने के पश्चात् दूसरे धा के आकार का लोप हुआ है। दधुः। दधा+इट्+थल्=(२४४) दधिथ (१४९) भारद्वाज के मत में इट् का विधान और। दधाथ (१५७) इट् का निषेध। दधथुः। दध। दधौ। दधिव। दधिम। धाता। धातारौ। धातारः। धातासि। धास्यति। धास्यतः। धास्यन्ति। धासति। धासाति। धयति। धयाति। धयतु। अधयत्। धयेत् ॥ २४५ ॥

२४६—दाधा घ्वदाप् ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

दा रूप और धा रूप जो धातु तथा इन की जो प्रकृति हैं उन की घु संज्ञा होवे। दाप् और दैप् धातु को छोड़ के। इस का फल ॥ २४६ ॥

२४७—एर्लिङि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, सा इन धातुओं के आकार को एकार आदेश होवे कित् ङित् लिङ् परे हो तो। धे को आकार (२४२) होता है उसी आकार को ए होकर। धेयात्। धेयास्ताम्। धेयासुः। धेयाः। धेयास्तम्। धेयास्त। धेयासम्। धेयास्व। धेयास्म ॥ २४७ ॥

२४८-विभाषा धेट्श्व्योः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४९ ॥

धेट् और श्वि धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में चङ् आदेश विकल्प करके होवे । अट् +धा+धा+चङ्+तिप्=अदधत् (१८०) द्वित्व और (२४४) आ का लोप । अदधताम् । अदधन् । अदधः । अदधतम् । अदधत । अदधम् । अदधाव । अदधाम । अब जिस पक्ष में चङ् न हुआ वहां उत्सर्ग सिच् होकर ॥२४८॥

२४९-विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७८ ॥

घ्रा, धेट्, शा, छा और सा इन धातुओं से परे जो सिच् उस का विकल्प करके लुक् हो परस्मैपदविषय में । धेट् धातु की घुसंज्ञा होने से (८९) सूत्र से सिच् लुक् नित्य प्राप्त और अन्य धातुओं से अप्राप्त है इन दोनों का विकल्प होने से प्राप्ताप्राप्तविभाषा इस सूत्र में समझनी चाहिये सिच् का लुक् होकर । अट्+धा+तिप्=अधात् । अधाताम् । अधा+झि यहा जुस् आदेश किसी से प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ २४९ ॥

२५०-आतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११० ॥

जिस से परे सिच् का लुक् हुआ हो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि उस को जुस् आदेश होवे । सिच् लुक् होने के पश्चात् प्रत्ययलक्षण कार्य्य मान के जुस् (१३४) हो जाता है फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सिज्लुगन्त से परे प्रत्ययलक्षण मान के आकारान्त धातुओं से परे ही जुस् हो अन्य से नहीं । अभूवन् । यहां भी सिच्लुक् (८९) हुआ है तो भी प्रत्ययलक्षण मान के जुस् नहीं होता । अट्+धा+जुस् = अधुः (८३) पररूप एकादेश । अधाः । अधातम् । अधात । अधाम् । अधाव । अधाम । सिच्लुक् (२४९) विकल्प से होता है जिस पक्ष में न हुआ वहां ॥२५० ॥

२५१-यमरमनमातां सक् च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७३ ॥

यम, रम, नम और आकारान्त धातुओं से परे जो सिच् उस को इट् का आगम और इन धातुओं को सक् का आगम होवे परस्मैपदविषय में । अट् + धा+ सक्+इट्+सिच् + ईट्+तिप्=अधासीत् । सिच् के सकार का लोप (१३२) हो जाता है । अधासिष्टाम् । अधासिषुः । अधासीः । अधासिष्टम् । आधासिष्ट । अधासिषम् । अधासिष्व । अधासिष्म । अधास्यत् । अधास्यताम् । अधास्यन् । [ग्लै म्लै] हर्षक्षये (आनन्द का नाश) ग्लै + शप् + तिप्=ग्लायति । ग्लायतः । ग्लायन्ति । लिट् आदि आर्द्धधातुक लकारों में धेट् के समान साधुत्व जानो । जग्लौ । जग्लतुः । मम्लौ । मम्लतुः ।

जग्लिथ । जग्लाथ । जग्लौ । जग्लिव । जग्लिम । ग्लातासि । ग्लास्यति । ग्लासति । ग्लासाति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिषि लिङ् में एकारादेश(२४७)नित्य प्राप्त है ॥ २५१ ॥

२५२ — वाऽन्यस्य संयोगादेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६८ ॥

(२४७) सूत्र में कहे घु संज्ञक आदि से अन्य संयोगादि आकारान्त धातुओं के आकार को एकार विकल्प करके हो कित् ङित् लिङ् परे हो तो । ग्लेयात् । ग्लायात् । म्लेयात् । म्लायात् । लुङ् में (२५१) सक् और इट् होकर । अग्लासीत् । अग्लासिष्टाम् । अम्लासीत् । अग्लास्यत् [द्यै] न्यक्करणे (नीचों का तिरस्कार करना) द्यायति । दद्यौ । दद्यिथ । दद्याथ । द्याता । द्यास्यति । द्यासति । द्यासाति । द्यायतु । अद्यायत् । द्यायेत् । द्येयात् । द्यायात् । अद्यासीत् । अद्यासिष्टाम् । अद्यासिषुः । अद्यास्यत् । [द्रै] स्वप्ने (सोना) द्रायति । दद्रौ । द्राता । द्रेयात् । द्रायात् । अद्रासीत् । (धै) तृप्तौ । धायति । दधौ । धेयात् । धायात् । अधासीत् [ध्यै] चिन्तायाम् (विचारना) ध्यायति । दध्यौ । ध्याता । ध्यास्यति । ध्यासति । ध्यासाति । ध्यायतु । अध्यायत् । ध्यायेत् । ध्येयात् । ध्यायात् । अध्यासीत् । अध्यास्यत् । [रै] शब्दे । रायति । ररौ । रातासि । रायात् । अरासीत् । [स्त्यै , ष्ट्यै] शब्दसङ्घातयोः (शब्द और समुदाय) इन दोनों में एक धातु षोपदेश है उस को भी सत्व होने पश्चात् एक ही प्रकार के रूप होते हैं षोपदेश का फल णिजन्त और सन्नन्त प्रक्रिया में आवेगा। स्त्यायति । तस्त्यौ । स्त्येयात् । स्त्यायात् । अस्त्यासीत् । [खै] खदने (खाना] खायति । चखौ । चखतुः । चखुः । चखिथ । चखाथ । खातासि । खास्यति । खासति । खासाति । खायतु । अखायत् । खायेत् । खायात् । अखासीत् । अखास्यत् [क्षै, जै, षै] क्षये (नाश) क्षायति । चक्षौ । क्षेयात् । क्षायात् । अक्षासीत् । जायति । जजौ । जायात् । अजासीत् । यहां भी षै धातु को आकार होकर सा हो जाता है परन्तु (२४७ । २४८) सूत्रों में सा धातु के ग्रहण से दिवादि गण का (षो) लिया जाता है । सायति । ससौ । सायात् । असासीत् [कै, गै] शब्दे । कायति । चकौ । कायात् । अकासीत् । गायति । जगौ । गायात् । अगासीत् [शै, श्रै] पाके (पकाना) शायति । शशौ । शायात् । अशासीत् । श्रायति । शश्रौ । श्रातासि । श्रास्यति । श्रासति । श्रासाति । श्रायति । श्रायाति । श्रायतु । अश्रायत् । श्रायेत् । श्रेयात् (२४७) श्रायात् । अश्रासीत् । अश्रास्यत् [पै, ओवै] शोषणे (सोखना) पायति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पपथुः ।

पप । पपौ । पपित्र । पपिम । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पायति । पायाति । पायतु । अपायत् । पायेत् । और पा धातु से भी उपदेश में आकारान्त पा धातु का ग्रहण (२४७) सूत्र में होता है । पायात् । इस कारण एत्व न हुआ अपासत् । अपासिष्टाम् । अपासिषुः । अपास्यात् । ओ वै धातु में ओकार इत् जाता है प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । वायति । ववौ । वायात् । अवासीत् [ष्टै] वेष्टने (लपेटना) स्तायति । तस्तौ । स्तेयात् । स्तायात् । अस्तासीत् [ष्णै] वेष्टने शोभायां चेत्येके । किन्हीं के मत में ष्णै धातु का शोभा अर्थ भी है । स्नायति । सस्नौ । स्नेयात् । स्नायात् । अस्नासीत् । अस्नास्यत् । [दैप्] शोधने (शोधना) इस में प् की इत्संज्ञा होती है और घुसंज्ञा का निषेध होने से एकार का निषेध (२४७) और सिच्लुक् (८९) नहीं होता दायति । ददौ । दायात् । अदासीत् [पा] पाने (पीना) यहां पा के स्थान में पिब आदेश (२३१) पिबति । पिबतः । पिबन्ति । पपौ पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पिबति । पिबाति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् । पेयात् । पेयास्ताम् । पेयासुः । अट्+पा+तिप् = अपात् (८९) सिच् का लुक् । अपाताम् । अपुः । अपास्यत् [घ्रा] गन्धोपादाने (गन्ध का ग्रहण वा गन्ध के द्वारा किसी पदार्थ का ग्रहण करना) घ्रा के स्थान में (२३१) जिघ्र आदेश । जिघ्रति । जिघ्रतः । जिघ्रन्ति । जघ्रौ । जघ्रतुः । घ्राता । घ्रास्यति । घ्रासति । घ्रासाति । जिघ्रति । जिघ्राति । जिघ्रतु । अजिघ्रत् । जिघ्रेत् । संयोगादि होने से एकार का विकल्प (२५३) घ्रेयात् । घ्रायात् । और सिच् लुक् का विकल्प (२४९) अघ्रात् । अघ्राताम् । अघ्रुः । अघ्राः । अघ्रातम् । अघ्रात । अघ्राम् । अघ्राव । अघ्राम । अघ्रासीत् । अघ्रासिष्टाम् । अघ्रासिषुः । अघ्रास्यत् [ध्मा] शब्दाग्निसंयोगयोः (शब्द और अग्नि के साथ वायु का संयोग) ध्मा के स्थान में धम (२३१) आदेश । धमति । धमतः । धमन्ति । दध्मौ । दध्मतुः । दध्मुः । दध्मिथ । दध्माथ । दध्मथुः । दध्म । दध्मौ । दध्मिव । दध्मिम । ध्मातासि । ध्मास्यति । ध्मासति । ध्मासाति । धमति । धमाति । धमतु । अधमत् । धमेत् । ध्मेयात् । ध्मायात् । अध्मासीत् । अध्मास्यत् [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ (ठहर जाना) (२३१) से तिष्ठ होकर तिष्ठति । तिष्ठतः । तिष्ठन्ति । तस्थौ । तस्थतुः । स्थातासि । स्थास्यति । स्थासति । स्थासाति । तिष्ठति । तिष्ठाति । तिष्ठतु । अतिष्ठत् । तिष्ठेत् । स्थेयात् (२४७) एकारादेश होता है । अस्थात् (८९) सिच्लुक् । अस्थाताम् । अस्थुः । अस्थास्यत् [म्ना] अभ्यासे (अभ्यास करना) मन आदेश (२३१) मनति । मम्नौ । म्नाता । म्नास्यति ।

म्नासति । मनति । मनाति । मनतु । अमनत् । मनेत । म्नेयात् । म्नायात् । अम्नासीत् । अम्नास्यत् [दाण] दाने (देना) दाण को यच्छ (२३१) यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । प्रयच्छति । ददौ । दातासि । दास्यति । दासति । दासाति । यच्छति । यच्छाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । इस धातु में णकार अनुबन्ध यच्छ आदेश विधायक सूत्र में विशेष बोध के लिये है । निरनुबन्ध दारूप की घुसंज्ञा (२४६) होकर एकार (२४७) होता है । देयात् । देयास्ताम् और घुसंज्ञा से ही सिच्लुक् अदात् । अदाताम् । अदुः । अदाः । अदास्यत् ॥ २५२ ॥

२५३ – ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १० ॥

लिट् लकार परे हो तो ऋकारान्त संयोगादि धातु को गुण होवे । लिट् की कित् संज्ञा (१३७) होने से गुण (४५) नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । और णल् प्रत्यय में जहां वृद्धि प्राप्त है वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती पूर्वविप्रतिषेध मानकर वृद्धि ही हो जाती है । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । थल् में भारद्वाज के मत में इट् का निषेध (१४९) और अन्यों के मत में इट् (१५७) नहीं होता । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार । जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्तासि । लिट् में गुण (२३८) ह्वरिष्यति । ह्वार्षति । ह्वार्षाति । ह्वर्षति । ह्वर्षाति । ह्वरति । ह्वराति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ॥ २५३ ॥

२५४–गुणोर्त्तिसंयोगाद्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २९ ॥

ऋ धातु और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुण होवे यक् और कित् आर्द्धधातुक लिङ् परे हो तो । ह्वर्यात् । ह्वर्यास्ताम् । ह्वर्यासुः । लुङ् में वृद्धि (१९८) होकर । अह्वार्षीत । अह्वार्ष्टाम् । अह्वार्षुः । अह्वार्षीः । अह्वार्ष्टम् । अह्वार्ष्ट । अह्वार्षम् । अह्वार्ष्व । अह्वार्ष्म । अह्वरिष्यत् [स्वृ] शब्दोपतापयोः (शब्द और पीड़ा देना) स्वरति । स्वरतः । स्वरन्ति । वलादि लिट् लकार में विकल्प से इट् (१४०) सस्वार । सस्वरतुः (२५३) गुण । सस्वरुः । सस्वरिथ । सस्वर्थ । सस्वर । सस्वार । सस्वर ॥ २५४ ॥

२५५–श्र्युकः किति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ् और एकाच् उगन्त धातु से परे जो कित् आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । (१४०) सूत्र यद्यपि इस सूत्र से पर है तथापि उस विकल्प को बाध के

पीछे विधान के प्रथम निषेध प्रकरण के आरम्भ सामर्थ्य से इट् का निषेध इस सूत्र से प्राप्त है फिर (१४८) सूत्र के नियमानुसार वस् मस् में नित्य इट् होता है। सस्वरिव । सस्वरिम । स्वरिता । स्वर्त्ता । स्वरिष्यति । यहां परत्व से नित्य इट् (२३८) होता है। स्वार्षति । स्वार्षाति । स्वरतु । अस्वरत् । स्वरेत् । स्वर्यात् (२५४) अस्वारीत् । अस्वारिष्टाम् । अस्वार्षीत् । अस्वार्ष्टाम् । अस्वरिष्यत् । [स्मृ] चिन्तायाम् (स्मरण करना) स्मरति । सस्मार । सस्मरतुः । सस्मरुः । सस्मर्थ । स्मर्त्ता । स्मरिष्यति । स्मार्षति । स्मार्षाति । स्मरतु । अस्मरत् । स्मरेत् । स्मर्यात् । अस्मार्षीत् । अस्मार्ष्टाम् । अस्मरिष्यत् । [वृ] संवरणे (ढांकना) वरति । वरतः । वरन्ति । ववार । वव्रतुः । वव्रुः । ववर्थ । वर्त्तासि । वरिष्यति । वार्षति । वार्षाति । वरतु । अवरत् । वरेत् । व्रियात् (२३६) रिङ् । अवार्षीत् । अवरिष्यत् । [सृ] गतौ (२३१) से सृ को धौ आदेश शीघ्र चलने में होकर । धावति । धावतः । अन्यत्र । सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्थ (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । ससृव । ससृम । सर्त्ता । सरिष्यति । सार्षति । सार्षाति । धावति । धावाति । धावतु । सरतु । अधावत् । असरत् । धावेत् । सरेत् । स्रियात् । स्रियास्ताम् ॥ २५५ ॥

२५६—सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५६ ॥

सृ, शासु और ऋ धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे परस्मैपदविषय में । इस से अङ् होकर अट्—सृ—अङ्—तिप् । इस अवस्था में अङ् के ङित् होने से गुण की प्राप्ति नहीं है इसलिये ॥ २५६ ॥

२५७—ऋदृशोऽङि गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १६ ॥

ऋवर्णान्त और दृश धातु को गुण होवे अङ् परे हो तो । यहां ऋवर्णान्त सृ धातु को अर् गुण होकर । असरत् । असरताम् । असरन् । असरः । असरतम् । असरत । असरम् । असराव । असराम । असरिष्यत् । असरिष्यताम् । असरिष्यन् [ऋ] गतिप्रापणयोः । यहां प्रापण अर्थ के पृथक् कहने से गमन और प्राप्ति दो ही अर्थ इस धातु के समझे जाते हैं अर्थात् ज्ञान अर्थ नहीं (२३१) से ऋच्छ आदेश होकर । ऋच्छति । ऋच्छतः । ऋच्छन्ति । ऋ—णल् । यहां परत्व से ऋ को आर् वृद्धि होकर आकार को द्वित्व और सवर्ण दीर्घ होकर । आर ॥ २५७ ॥

२५८—ऋच्छत्यॄताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ११ ॥

तुदादि गण का ऋच्छ, ऋ और ॠकारान्त धातुओं को गुण हो लिट् परे हो तो ।

यहां भी कित् लिट् में गुण नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । अर् + अर्+अतुस्= आरतुः । आरुः (१४८) सूत्र के नियम से लिट् में सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है। भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) प्राप्त और अन्य लोगों के मत में थल् में इट्का निषेध (१५७) प्राप्त है इन सब का अपवाद ॥ २५८ ॥

२५९–इडत्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६६ ॥

अद्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य इडागम होवे । आरिथ । आरथुः । आर २ । आरिव । आरिम । यहां व, म में (१४८) सूत्र के नियम से ही नित्य इट् होता है । अर्त्ता । अर्त्तारौ । अर्त्तारः । अर्त्तासि । अरिष्यति (२६८) इट् । आर्षति । आर्षाति । अर्षति । अर्षाति । अर्षत् । अर्षात् । ऋच्छति । ऋच्छाति । ऋच्छतु । आर्च्छत् । ऋच्छेत् । अर्यात् (२५४) गुण । लुङ् में च्लि के स्थान में अङ् (२५६) और अङ् के परे गुण (२५७) होकर आरत् । आरताम् । आरन् । आरः । आरतम् । आरत । आरम् । आराव । आराम । आरिष्यत् । [गृ, घृ] सेचने (सींचना) गरति । घरति । जगार । जग्रतुः । जगर्थ । जघर्थ । जग्रिव । जग्रिम । गर्त्तासि । गरिष्यति । गार्षति । गार्षाति । गरतु । अगरत् । गरेत् । ग्रियात् । (२३९) रिङ् । घ्रियात् । अगार्षीत् (१५८) वृद्धि होकर । अगार्ष्टाम् । अगार्षुः । अघार्षीत् । अगरिष्यत् [ध्वृ] हूर्छने । ध्वरति । ध्वरतः । ध्वरन्ति । दध्वार । दध्वरतुः (२५३) गुण । दध्वरुः । ध्वर्त्ता । ध्वरिष्यति । ध्वार्षति । ध्वार्षाति । ध्वरतु । अध्वरत् । ध्वरेत् । ध्वर्यात् (२५४) गुण । ध्वर्यास्ताम् । ध्वर्यासुः । अध्वार्षीत् । अध्वार्ष्टाम् । अध्वरिष्यत् [स्रु] गतौ । स्रवति । स्रवतः । स्रवन्ति । सुस्राव । सुस्रुवतुः । (२५९) उवङ् । सुस्रुवुः । सुस्रोथ । सुस्रुवथुः । सुस्रुव । सुस्राव । सुस्रव (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । सुस्रुव । सुस्रुम । स्रोतासि । स्रोष्यति । स्रौषति । स्रौषाति । स्रोषति । स्रोषाति । स्रवति । स्रवाति । स्रवतु । अस्रवत् । स्रवेत् । स्रूयात् (१६०) दीर्घ लुङ्में (१७९) सूत्र से च्लि के स्थान में चङ् और द्विर्वचन (१८०) हो कर। अट्+स्रु+स्रु+चङ्+तिप् = असुस्रवत् । अस्रोष्यत् [षु]प्रसवैश्वर्य्ययोः (उत्पत्ति और सामर्थ्य का होना) सवति । सुषाव । सुषुवतुः । सुषुवुः । सुषोथ । सुषुविव । सोता । सोष्यति । सौषति । सौषाति । सवति । सवाति । सवतु । असवत् । सवेत् । सूयात् (१६०) दीर्घ । असौषीत् । असौष्टाम् । असौषुः । असोष्यत् [श्रु] श्रवणे (सुनना) शप्विकरण प्राप्त है उसका बाधक ॥ २५९ ॥

२६०–श्रुवः शृ च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७४ ॥

श्रु धातु से श्नु प्रत्यय और श्रु धातु को शृ आदेश होवे। श्नु प्रत्यय में शकार की इत्संज्ञा होकर शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा हो जाती है फिर ऋकार से णत्व(२०२) होकर। शृ+णु+तिप् (२१) गुण=शृणोति। शृणुतः। झि प्रत्यय में उवङ् (१५१) आदेश प्राप्त है इसलिये ॥ २६० ॥

२६१-हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसे हु और श्नु प्रत्ययान्त अनेकाच् धातु के उवर्ण को यण् आदेश होवे अजादि सार्वधातुक परे हो तो। शृण्वन्ति। शृणोषि। शृणुथः। शृणुथ। शृणोमि। शृणु+वस्=शृण्वः (२००) उकार लोप का विकल्प। शृणुवः। शृण्मः। शृणुमः। शुश्राव। शुश्रुवतुः। (१५१) उवङ्। शुश्रुवुः। शुश्रोथ। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव। शुश्रव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोतारौ। श्रोतासि। श्रोष्यति। श्रौषति। श्रौषाति। शृण्वति। शृणवाति। शृणोतु। शृणुतात्। शृणुताम्। शृण्वन्तु। शृणु (२०१) हिलुक्। शृणुतात्। शृणुतम्। शृणुत। शृणवानि। शृणवाव। शृणवाम। अशृणोत्। अशृणुताम्। अशृण्वन्। अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम्। अशृण्व। अशृणुव। अशृण्म। अशृणुम। शृणुयात्। शृणुयाताम्। शृणुयुः। शृणुयाः। शृणुयातम्। शृणुयात। शृणुयाम्। शृणुयाव। शृणुयाम। श्रूयात् (१६०) दीर्घ। अश्रौषीत् (१५८) वृद्धि। अश्रौष्टाम्। अश्रौषुः। अश्रोष्यत् [ध्रु] स्थैर्य्ये (स्थिर होना) ध्रुवति। दुध्राव। दुध्रुवतुः। दुध्रोथ। दुध्रुविथ। दुध्रुविव। ध्रोता। ध्रोष्यति। ध्रौषति। ध्रौषाति। ध्रुवति। ध्रुवाति। ध्रुवतु। अध्रुवत्। ध्रुवेत्। ध्रूयात्। अध्रौषीत्। अध्रोष्यत् [दु, द्रु] गतौ। दवति। द्रवति। दुदाव। दुद्राव। दुदुवतुः। दुद्रुवतुः। दुदोथ। दुदविथ। दुदुविव। दुद्रोथ। यहां (१४८) नियम से नित्य इट् का निषेध हो जाता है परन्तु भारद्वाज के मत में ऋकारान्त के निषेध का नियम होने से थल् में इट् प्राप्त है उस का भी क्रयादि नियामक सूत्र अपवाद जाना। द्राता। द्रातासि। द्रोष्यति। द्रौषति। द्रौषाति। द्रवतु। अद्रवत। द्रवेत्। द्रूयात्। दूयात्। अदौषीत्। लुङ् में (१७६) चङ् और (१८०) द्विर्वचन होकर। अदुद्रुवत्। अदुद्रुवताम्। अदुद्रुवन् अद्रोष्यत् [जि, ज्रि] अभिभव (तिरस्कार) जयति। जयतः। जयन्ति। लिट् में कुत्व (१६८) जिगाय। जिग्यतुः। जिग्युः। जिगेथ। जिगयिथ। जिज्राय। जिज्रियतुः। जिज्रेथ। जिज्रयिथ। जेतासि। ज्रेतासि। जेष्यति। ज्रेष्यति। जेषति। जेषाति। जयतु अजयत्। जयेत्। जीयात् (१६०) दीर्घ। अजैषीत्। अजेष्यत्। अज्रैषीत्। अज्रेष्यत्।

इति घेटादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः। परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशत् समाप्ताः ये धेट् आदि ४६ धातु अनिट् परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

अथ डीङन्ता ङितस्त्रयोविंशतिः। अब डीङ् पर्यन्त २३ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ष्मिङ्] ईषद्धसने (थोड़ा हँसना) स्मयते (११) गुण। स्मयेते। स्मयन्ते। सिष्मिये। सिष्मियिढ्वे। सिष्मियिध्वे। स्मेतासे। स्मेष्यते। स्मैषतै। स्मैषातै। स्मयैत। स्मयातै। स्मयताम्। अस्मयत। स्मयेत। स्मेषीष्ट। स्मेषीढ्वम्। अस्मेष्ट। अस्मेढ्वम्। अस्मेष्यत। [गुङ्] अव्यक्ते शब्दे। गवते। जुगुवे। जुगुविढ्वे। जुगुविध्वे। गोतासे। गोष्यते। गौषतै। गौषातै। गवतै। गवातै। गवताम्। अगवत। गवेत्। गोषीष्ट। गोषीढ्वम्। अगोष्ट। अगोढ्वम्। अगोष्यत [गाङ्] गतौ। इस धातु के अनुबन्ध का लोप होने पश्चात् आकारान्त के रहने से शप् के अकार के साथ सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। गा+शप्+त=गाते। गाते। गाते (१२३) अत्। गासे। गाथे। गाध्वे। गै। गावहे। गामहै। गा+एश् यहां आकारलोप (२४४) और द्विर्वचन की व्यवस्था (२४५) होकर। जगे। जगाते। जगिरे। जगिषे। जगाथे। जगिध्वे। जगे। जगिवहे। जगिमहे। गाता। गास्यते। गासतै। गासातै। गासते। गासाते। गातै २। गाताम् ३। अगात। अगाताम्। अगात। गेत। गेयाताम्। गेरन्। गासीष्ट। अगास्त। अगासाताम्। अगासत। अगास्थाः। अगासाथाम्। अगाध्वम्। अगासि। अगास्वहि। अगास्महि। अगास्यत। [उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, ङुङ्] शब्दे। अवते। ऊवे। ऊवाते। ऊविरे। ऊविढ्वे। ऊविध्वे। ओतासे। ओष्यते। औषतै। औषातै। अवतै। अवातै। अवताम्। अवेताम्। अवन्ताम्। आवत। अवेत। ओषीष्ट। ओषीढ्वम्। औष्ट। औषाताम्। औषत। औढ्वम्। औष्यत। कवते। चुकुवे। कोतासे। कोष्यते। कौषतै। कौषातै। कवताम्। अकवत। कवेत। कोषीष्ट। अकोष्ट। अकोष्यत। खवते। चुखुवे। गवते। जुगुवे। घवते। जुघुवे। ङवते। ङुङुवे। ङोता। ङोष्यते। ङोषतै। ङोषातै। ङवताम्। अङवत। ङवेत। ङोषीष्ट। अङोष्ट। अङोष्यत [च्युङ्, ज्युङ् प्रुङ्, प्लुङ्] गतौ [क्लुङ्] इत्येके [रुङ्] गतिरेषणयोः (गति और हिंसा) च्यवते। ज्यवते। प्रवते। प्लवते। क्लवते। रवते। रुरुवे। रुरुविढ्वे। रुरुविध्वे। और रुधातु सेट् अनिट् व्यवस्था में पढ़ा है वहां यु, रु आदि अदादि धातुओं के साहचर्य से अदादि का ही रु धातु भी लिया जाता है। रोतासे। रोष्यते। रौषतै। रौषातै। रवताम्। अरवत। रवेत। रोषीष्ट। रोषीढ्वम्। अरोष्ट। अरोढ्वम्। अरोष्यत [धृङ्] अवध्वंसने

(नाश करना) धरते । दध्रे । धर्त्तासे । धारिष्यते (२३८) इट् । धार्षते । धार्षातै । धरताम् । अधरत । धरेत । धृषीष्ट (२४०) इस से कित्वत् होकर (४९) गुण का निषेध होता है । अधृत (२४० । २४१) अधृषाताम् । अधृषत । अधरिष्यत [मेङ्] प्रणिदाने (किसी पदार्थ के बदले में दूसरा वस्तु देना) मयते । मयेते । मयन्ते । ममे (२४२ । २४४ । २४५) ममाते । ममिरे । मातासे । मास्यते । मासतै । मासातै । मयताम् । अमयत । मयेत । मासीष्ट । अमास्त । अमासाताम् । अमासत । अमास्यत [देङ्] रक्षणे । दयते ॥ २६१ ॥

२६२—दयतेर्दिगि लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९ ॥

दयति धातु को दिगि आदेश होवे लिट् लकार परे हो तो । इस सूत्र में (दय; दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस लिखित धातु का ग्रहण इसलिये नहीं होता कि दय धातु से लिट् में आम् प्रत्यय कह चुके हैं और यह सूत्र द्विर्वचन का अपवाद है दिगि+एश्=दिग्ये (१५६) यण् । दिग्याते । दिग्यिरे । दातासे । दास्यते । दासतै । दासातै । दयताम् । अदयत । दयेत । दासीष्ट । दा धातु की प्रकृति होने से इस की घु संज्ञा (२४६) होकर ॥ २६२ ॥

२६३—स्थाघ्वोरिच्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १७ ॥

स्था धातु और घुसंज्ञक धातुओं को इकारादेश और इन से परे जो सिच् प्रत्यय सो कित्वत् हो आत्मनेपदविषय में । स्था धातु प्रथम लिख चुके हैं परन्तु वहां आत्मनेपद के न होने से इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई पदव्यवस्थाप्रक्रिया में काम आवेगा । यहां दा धातु के आकार को इकार होकर । अट् + दि + सिच्+त=अदित (२४१) सूत्र से सिच् के सकार का लोप । अदिषाताम् । अदिषत । अदिथाः । अदिषाथाम् । अदिध्वम् । अदिषि । अदिष्वहि । अदिष्महि । [श्यैङ्] गतौ । श्यायते । शिश्ये । श्यातासे । श्यास्यते । श्यासतै । श्यासातै । श्यायताम् । अश्यायत । श्यायेत । श्यासीष्ट । अश्यास्त । अश्यास्यत [प्यैङ्] वृद्धौ (बढ़ना) प्यायते । पप्ये । प्यातासे । अप्यास्त । अप्यास्यत [त्रैङ्] पालने । (रक्षा) त्रायते । तत्रे । त्राता । त्रास्यते । त्रासतै । त्रासातै । त्रायताम् । अत्रायत । त्रायेत । त्रासीष्ट । अत्रास्त । अत्रास्यत । ष्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ता आत्मनेपदिनः । ष्मिङ् से यहांतक सब धातु अजन्त अनिट् जानो ॥

[पूङ्] पवने (शुद्धि) पवते । पुपुवे । पुपुविढ्वे । पुपुविध्वे । पवितासे । पविष्यते ।

पाविषतै । पाविषातै । पविषतै । पविषातै । पवतै । पवातै । पवताम् । अपवत । पवेत । पविषीष्ट । अपविष्ट । अपविष्यत । [मूङ्] बन्धने (बांधना) मवते । [डीङ्] विहाय-सागतौ । (आकाश में उड़ना) डयते । डिड्ये । डयिता । डयिष्यते । डायिषतै । डायिषातै । डायिषते डायिषाते । डयताम् । अडयत । डयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत । ये पूङ् आदि तीन धातु सेट् हैं ॥ [तॄ] प्लवनसंतरणयोः (कूदना और तरना) उदात्तः परस्मैपदी । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । तरति । तरतः । तरन्ति । ततार । यहां प्रथम वृद्धि होकर द्वित्व होता है । तॄ—अतुस् । यहां अप्राप्त गुण (२५८) और एत्वा-भ्यास लोप (१६४) होकर । तेरतुः । तेरुः । तेरिथ । तेरथुः । तेर । ततार । ततर । तेरिव । तेरिम ॥ २६३ ॥

२६४—वॄतो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो इट् का आगम उस को विकल्प करके दीर्घ होवे परन्तु लिट् लकार परे न हो । तरीतासि । तरितासि । इस सूत्र में लिट् का निषेध इसलिये है कि तेरिथ । यहां दीर्घ न होवे । तरीष्यति । तरिष्यति । तारीषति । तारीषाति । तारिषति । तारिषाति । तरीषति । तरीषाति । तरिषति । तरिषाति । तरति । तराति । तरतु । अतरत् । तरेत् ॥ २६४ ॥

२६५—ॠत इद्धातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०० ॥

ॠकारान्त धातु अङ्ग को इत् आदेश होवे । इस इत् आदेश के कहने में कुछ विशेष नहीं है परन्तु जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति है वहां तो परविप्रतिषेध मानके गुण वृद्धि ही होते हैं और जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति नहीं वहां इत्व होता है । तिर्+या+तिप् = तीर्यात् (१९७) दीर्घ । तीर्यास्ताम् । तीर्यासुः ॥ २६५ ॥

२६६ — सिचि च परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४० ॥

परस्मैपदविषय में सिच् परे हो तो वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ न होवे । (२६४) सूत्र से सर्वत्र दीर्घ प्राप्त है उस का विशेष विषय में बाधक है । अतारीत् । अतारिष्टाम् । अतारिषुः । अतरीष्यत् ॥ २६६ ॥

अथाष्टावनुदात्तेतः । अब आठ ८ धातु सेट् आत्मनेपदी कहते हैं [गुप] गोपने । यहां गोपन धातु का स्वार्थ लिया जाता है सन् के विना इस का प्रयोग स्वतन्त्र कहीं नहीं आता सन्नन्त का अर्थ निन्दा होता है वही इस का स्वार्थ है । [तिज] निशाने इस धातु का स्वार्थ सहन अर्थ है ॥ २६६ ॥

२६७–गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५ ॥

गुप्, तिज् और कित् इन तीन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय हो । गुप् धातु से निन्दा और तिज् से सहने अर्थ में सन् प्रत्यय जानो । गुप्+सन् ॥ २६७ ॥

२६८—सन्यङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९ ॥

सन् और यङ् प्रत्यय परे हों तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे । जुगुप्स (१०७) अभ्यास को चवर्गादेश होकर इस की धातु संज्ञा (१६७) होकर अनुदात्त अनुबन्ध के केवल गुप् आदि में चरितार्थ न होने से सन्नन्त धातुओं से भी आत्मनेपद होते हैं । जुगुप्स+शप् + त=जुगुप्सते । जुगुप्सेते । जुगुप्सन्ते । जुगुप्साञ्चक्रे (१६९ । १७०) जुगुप्साम्बभूव । जुगुप्सामास । जुगुप्सितासे । जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सिषतै । जुगुप्सिषातै । जुगुप्सताम् । अजुगुप्सत । जुगुप्सेत । जुगुप्सिषीष्ट । अजुगुप्सिष्ट । अजुगुप्सिष्यत । तिज्—तिज्—सन् । यहां द्वितीय चवर्ग जकार को (खरि च) सूत्र से क् होकर सन् के सकार को ष (२०५) होकर तितिक्ष+शप्+त = तितिक्षते । तितिक्षाञ्चक्रे । तितिक्षामास । तितिक्षाम्बभूव । तितिक्षितासे । इत्यादि [मान] पूजायाम् (सत्कार) [बध] बन्धने (बांधना) ॥ २६८ ॥

२६९–मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥३।१।६॥

मान, बध, दान और शान धातुओं से सन् प्रत्यय होवे और सन् प्रत्यय के परे इन के अभ्यास को दीर्घ होवे । मान धातु से जानने की इच्छा में और बध धातु से चित्तविकार अर्थ में सन् जानो । मान धातु के अभ्यास को प्रथम ह्रस्व (३९) होकर अभ्यास के अकार को इकार (१८२) होता है उसी इकार को (मानबध०) सूत्र से दीर्घ जानो । मीमांसते । मीमांसेते । मीमांसन्ते । मीमांसाञ्चक्रे । मीमांसाम्बभूव । मीमांसामास । बध् + बध्+सन्+शप्+त=बीभत्सते (२०४) भष्भाव अभ्यास को दीर्घ और चर्त्व होकर । बीभत्सेते । बीभत्साञ्चक्रे । बीभत्सितासे । बीभत्सिष्यते । बीभत्सिषतै । बीभत्सिषातै । बीभत्सताम् । अबीभत्सत । बीभत्सेत । बीभत्सिषीष्ट । अबीभत्सिष्ट । अबीभत्सिष्यत । गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगम(४६)और पूर्व को गुण प्राप्त है सो गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय के न कहने से सन् की आर्द्धधातुक संज्ञा नहीं होती जो धातु से विहित हैं उन्हीं प्रत्ययों की आर्द्धधातुक संज्ञा (४९) कही है , और आर्द्धधातुक संज्ञा के न होने से इट् और गुण दोनों ही नहीं

होते। गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये गुप् आदि ४ चार सेट् आत्मनेपदी धातु समाप्त हुए [रभ] राभस्ये (शीघ्र करना) रभते। रभेते। रेभे। रेभाते। रभ् + तास्+डा—रब्धा (१४१) धत्व और भकार को जश् बकार होता है। रब्धारौ। रब्धासे। रप्स्यते। (चर्) राप्सते। राप्सातै। रभताम्। अरभत। रभेत। रप्सीष्ट। अरब्ध (१४२) सलोप। अरप्साताम्। अरब्धाः। अरप्साथाम्। अरब्ध्वम्। अरप्सि। अरप्स्वहि। अरप्स्महि। अरप्स्यत। [डुलभष्] प्राप्तौ। डु की इत्संज्ञा (१५०) और ष् की इत्संज्ञा का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा। लभते। लभेते। लभन्ते। लभसे। लेभे। लेभाते। लेभिरे। लेभिषे। लब्धासे। लप्स्यते। लाप्सतै। लाप्सातै। लभताम्। अलभत। लभेत। लप्सीष्ट। अलब्ध। अलप्साताम्। अलप्स्यत (ष्वञ्ज) परिष्वङ्गे (लपेटना) ॥ २६९ ॥

२७० — दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ अ० ॥ ६। ४। २५ ॥

दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधा नकार का लोप होवे शप् प्रत्यय परे हो तो। स्वजते। स्वजेते। स्वजन्ते। यह धातु संयोगान्त है इस कारण इस से परे लिट् की कित् संज्ञा (१३७) नहीं प्राप्त है और कित्संज्ञा के न होने से उपधा नकार का लोप भी नहीं पाता इसलिये ॥ २७० ॥

२७१ — वा० — श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् ॥

श्रन्थ, ग्रन्थ, दम्भ, स्वञ्ज इन धातुओं से परे जो लिट् सो कित्वत् हो। यहां स्वञ्ज धातु से परे कित्व होकर उपधा नकार का लोप (१३९) होकर। सस्वजे। सस्वजाते। सस्वजिरे। इस धातु के अनिट् होने से स्वञ्ज + तास्+डा = स्वङ्क्ता। कुत्व चर्त्व और परसवर्ण। स्वङ्क्तासे। स्वङ्क्ष्यते। स्वङ्क्षतै। स्वङ्क्षातै। स्वजताम्। अस्वजत। स्वजेत। स्वङ्क्षीष्ट। अस्वङ्क्त। अस्वङ्क्ष्यत। [हद] पुरीषोत्सर्गे (हगना) हदते। जहदे। जहदाते। जहदिरे। हत्ता। हत्स्यते। हात्सतै। हात्सातै। हदताम्। अहदत। हदेत। हत्सीष्ट। अहत्त। अहत्साताम्। अहत्सत। अहत्स्यत। रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये रभ आदि अनिट् आत्मनेपदी चार धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पंचदश। अब १५ पन्द्रह धातु परस्मैपदी कहते हैं [ञिष्विदा] अव्यक्ते शब्दे। उदात्तः परस्मैपदी। स्वेदति। सिस्वेद। सिस्विदतुः। सिस्विदुः। स्वेदिता। स्वेदिष्यति। स्वेदिषति। स्वेदिषाति। स्वेदतु। अस्वेदत्। स्वेदेत्। स्विद्यात्।

अस्वेदीत् । अस्वेदिष्यत् । [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः (गति और शोखना)स्कन्दति । चस्कन्द । चस्कन्दतुः । चस्कन्दिथ ॥ २७१ ॥

२७२—झरो झरि सवर्णे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६५ ॥

हल् से परे जो झर् उस का लोप हो सवर्णी झर् परे हो तो । स्कन्द्+थल् = स्कन्थ । यहां नकार से परे दकार का लोप होता है । स्कन्तासि । स्कन्त्स्यति । स्कन्त्सति । स्कन्त्साति । स्कन्दतु । अस्कन्दत् । स्कन्देत् । स्कद्यात् (१३९) नकार का लोप । लुङ् में इरित् होने से अङ् (१३८) विकल्प । अस्कदत् (१३९) नलोप । पक्ष में । अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः (१३५) वृद्धि । अस्कान्त्सीः । अस्कान्तम् अस्कान्त । अस्कान्त्सम् । अस्कान्त्स्व । अस्कान्त्स्म [यभ] मैथुने (स्त्रीसंग करना) यभति । यभतः । यभन्ति । ययाभ । येभतुः । येभुः । येभिथ (२१५) ययब्ध । यब्धासि । यप्स्यति । यप्सति । याप्साति । यभति । यभाति । यभतु । अयभत् । यभेत् । यभ्यात् । अयाप्सीत् । अयाब्धाम् । अयाप्सुः । अयाप्सीः । अयाब्धम् । अयाब्ध । अयाप्सम् । अयाप्स्व । अयाप्स्म । अयप्स्यत् । [णम] प्रह्वत्वे शब्दे (नम के बोलना) नमति । ननाम । नेमतुः । नेमुः । नेमिथ । ननन्थ । नेमथुः । नेम । ननाम । ननम । नेमिव । नेमिम । नन्तासि । नंस्यति । नांसति । नांसाति । नमति । नमाति । नमतु । अनमत् । नमेत् । नम्यात् । यह धातु अनिट् तो है परन्तु लुङ् लकार में इट् और सक् का आगम (२५१) होजाता है । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । अनंस्यत् [गम्लृ,सृप्लृ] गतौ ॥ २७२ ॥

२७३—इषुगमियमां छः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७७ ॥

इषु,गम और यम धातुओं को छकारादेश होवे शित् प्रत्यय परे हो तो । यहां अन्त्य अल् गम के मकार को छकार होकर । गच्छति । गच्छतः । गच्छन्ति । जगाम । जग्मतुः । जग्मुः (२१४) उपधालोप । जगमिथ । जगन्थ (२१५) । गन्ता । गन्तारौ । गन्तारः । गन्तासि ॥२७३ ॥

२७४—गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५८ ॥

परस्मैपदविषय में गम धातु से परे सकारादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम होवे । गमिष्यति । गमिष्यतः । गमिष्यन्ति । गच्छति । गच्छाति । गच्छत् । गच्छात् । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । लुङ् लकार में (२१७) सूत्र से अङ् और अङ् के परे उपधालोप का निषेध (२१४) होने से उपधालोप नहीं होता । अगमत् । अगमताम् ।

अगमन् । अगमः । अगमतम् । अगमत । अगमम् । अगमाव । अगमाम । अगमिष्यत् । सर्पति । सर्पतः । सर्पन्ति । ससर्प । समृपतुः । ससर्पिथ । समृपथुः ॥ २७४ ॥

२७५-अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५९ ॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो ऋकार जिस की उपधा में हो ऐसा जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) धातु उस को अम् का आगम होवे विकल्प करके । मित् आगम अन्त्य अच् से परे होता है । सृ अम्+प्+तासि+डा=स्रप्ता । सर्प्ता । स्रप्तासि । सर्प्तासि अम् के अकार को मान के यण् होता और पक्ष में गुण (५१) हो जाता है । स्रप्स्यति सर्प्स्यति । स्रप्सति । स्रप्साति । सर्प्सति । सर्प्साति । सर्पति । सर्पाति । सर्पतु । असर्पत् । सर्पेत् । सृप्यात् । असृपत् (२१७) अङ् । असृपताम् । असृपन् । असृपः । असृपतम् । असृपत । असृपम् । असृपाव । असृपाम । अस्रप्स्यत् । असर्प्स्यत् । [यम] उपरमे (शान्त होना) (२७३) छकारादेश होकर । यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । ययाम । येमतुः । येमिथ । ययन्थ । येमिव । यन्तासि । यंस्यति । यांसति । यांसाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । यम्यात् । लुङ् में (१५१) इट् और सक् । अयंसीत् । अयंसिष्टाम् । अयंसिषुः । अयंस्यत् [तप] सन्तापे । (दुःख भोगना) तपति । तताप । तेपतुः । तप्ता । तप्स्यति । ताप्सति । ताप्साति । तपति । तपाति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अताप्सुः । अताप्सीः । अतप्स्यत् । [त्यज] हानौ (हानि होनी). त्यजति । त्यजतः । त्यजन्ति । तत्याज । तत्याजिथ । तत्यक्थ । तत्यजिव । वैदिक प्रयोगविषय में त्यज आदि निम्नलिखित धातुओं के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं । यद्यपि प्रथम स्पर्द्ध धातु पर ही इस सूत्र को लिखना था तो भी सर्वत्र समझ लेना चाहिये ॥ २७५ ॥

२७६-अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताःश्रितमाशीराशीर्त्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३६ ॥

(अपस्पृधेथाम्) इस प्रयोग में लङ् लकार उत्तम पुरुष के द्विवचन में (स्पर्द्ध, संघर्षे) धातु को द्विर्वचन रेफ को सम्प्रसारण और अनभ्यास के अकार का लोप निपातन से किया है । अट्+स्पर्द्ध+स्पर्द्ध+आथाम्=अपस्पृधेथाम् । और दूसरा प्रकार यह भी है कि अप उपसर्गपूर्वक स्पर्द्ध धातु के रेफ को सम्प्रसारण और अकार का लोप ही निपातन है वेद में माङ् का योग न हो तो भी अट् का निषेध है । (आनृचुः)और

(आनृहुः) यहां (अर्च,पूजायाम्) और (अर्ह, पूजायाम्) इन दोनों धातुओं से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन (उस्) में रेफ को संप्रसारण अकार का लोप तत्पश्चात् द्वित्व निपातन से और (१०६) सूत्र से अभ्यास के ऋकार को अकार होता है (चिच्युषे) यहां (च्युङ्, गतौ) धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष के एक वचन में अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् का अभाव निपातन से किया है (तित्याज) यहां इसी त्यज धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निपातन से किया है । तित्यजतुः। इत्यादि (श्रातः) यहां (श्रीञ् पाके) धातु को कृदन्त क्त प्रत्यय के परे श्राभाव निपातन किया है (श्रितम्) और यहां भी उक्त धातु को क्त के परे श्रिभाव है (आशीः) (आशीर्तः) यहां भी आङ्पूर्वक उक्त श्रीञ् धातु को क्विप् और क्त प्रत्यय के परे शीर् आदेश हुआ है । त्यक्तासि । त्यक्ष्यति । त्यक्षति । त्यक्षाति । त्यजतु । अत्यजत् । त्यजेत् । त्यज्यात् । अत्याक्षीत् । अत्याक्ताम् । अत्याक्षुः । अत्याक्षीः । अत्याक्तम् । अत्याक्त । अत्याक्षम् । अत्याक्ष्व । अत्याक्ष्म । अत्यक्ष्यत् [षञ्ज] सङ्ग (मेल) (२७०) सूत्र से उपधा नकार का लोप होकर । सजति । सजतः । ससञ्ज । ससञ्जतुः । ससञ्जिथ । ससङ्क्थ । सङ्क्तासि । सङ्क्ष्यति । सङ्क्षति । सङ्क्षाति । सजतु । असजत् । सजेत् । सज्यात् । असाङ्क्षीत् । असाङ्क्ताम् । असाङ्क्षुः (१३५) वृद्धि । असङ्क्ष्यत् । [दृशिर्] प्रेक्षणे (अच्छे प्रकार देखना) पश्य आदेश (२३१) सूत्र से होकर । पश्यति । पश्यतः । पश्यन्ति । ददर्श । ददृशतुः । ददृशुः ॥ २७६ ॥

२७७ – विभाषा सृजिदृशोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६५ ॥

सृज और दृश धातु से परे जो थल् उस को विकल्प करके इडागम होवे । इट् पक्ष में । ददर्शिथ । अनिट् पक्ष में । ददृश्–थल् । यहां ॥ २७७ ॥

२७८ – सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५८ ॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज और दृश धातुओं को अम् आगम होवे । यह सूत्र (२७५) सूत्र का अपवाद है क्योंकि (२७५) सूत्र में सामान्य ऋदुपध धातुओं को अम् आगम विकल्प से कहा है उस का यह विशेष है । ददृ अम्+श्+ थल्—दद्रष्ठ । ऋकार को यण् और (२३३) सूत्र से शकार को षकार होता है । ददृशथुः । ददृश । ददर्श । ददृशिव । ददृशिम । द्रष्टासि । द्रक्ष्यति । द्राक्षति । द्राक्षाति । पश्यति । पश्याति । पश्यतु । अपश्यत् । पश्येत् । दृश्यात् । (१३८) सूत्र से अङ् का विकल्प होकर अङ्पक्ष में । अदर्शत् । (२५७) गुण और

जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां (२०७) सूत्र से च्लि के स्थान में क्स प्राप्त है इसलिये ॥ २७८ ॥

२७९–न दृशः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४७ ॥

दृश धातु से परे च्लि के स्थान में क्स आदेश न होवे। फिर अम् (२७८) और वृद्धि (१३५) होकर। अद्राक्षीत्। अद्राष्टाम्। अद्राक्षुः। अद्राक्षीः। अद्राष्टम् अद्राष्ट। अद्राक्षम्। अद्राक्ष्व। अद्राक्ष्म। अद्रक्ष्यत् [दंश] दशने (काट खाना) नकारलोप (२७०) दशति। दशतः। दशन्ति। ददंश। ददंशतुः। ददंशिथ। ददंष्ठ (२३३) श को ष। दंष्टासि। दङ्क्ष्यति। दङ्क्षति। दङ्क्षाति। दशति। दशाति। दशतु। अदशत्। दशेत्। दश्यात् (१३९) अदाङ्क्षीत्। अदांष्टाम्। अदाङ्क्षुः। अदङ्क्ष्यत् [कृष] विलेखने (जोतना, खींचना वा खोदना) कर्षति। चकर्ष। चकृषतुः। चकर्षिथ। क्रष्टासि। यहां विकल्प से अम् (२७५) और पक्ष में गुण होता है। क्रक्ष्यति। कर्क्ष्यति। क्रक्षति। क्रक्षाति। कर्क्षति। कर्क्षाति। कर्षति। कर्षाति। कर्षतु। अकर्षत्। कर्षेत्। कृष्यात्। लुङ् में च्लि के स्थान में नित्य क्स (२०७) प्राप्त है इसलिये ॥ २७९ ॥

२८० – वा०—स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज् वा ॥

स्पृश, मृश, कृष, तृप और दृप धातुओं से परे च्लि के स्थान में सिच् विकल्प करके हो अर्थात् एक पक्ष में क्स और दूसरे पक्ष में सिच् भी रहे। जिस पक्ष में सिच् हुआ वहां वृद्धि (१३५) और अम् होकर। अक्राक्षीत्। अक्राष्टाम्। अकार्क्षीत्। अकार्ष्टाम्। अकार्क्षुः। और जिस पक्ष में क्स होता है वहां। अकृक्षत्। अकृक्षताम्। अकृक्षन्। अकर्क्ष्यत् [दह] भस्मीकरणे (भस्म कर देना) दहति। ददाह। देहतुः। देहिथ। ददग्ध। दग्धासि। धक्ष्यति। धाक्षति। धाक्षाति। दहति। दहाति। दहतु। अदहत्। दहेत्। दह्यात्। अधाक्षीत्। अदाग्धाम्। अधाक्षुः। अधाक्षीः। अदाग्धम्। अदाग्ध। अधाक्षम्। अधाक्ष्व। अधाक्ष्म। अधक्ष्यत् [मिह] सेचने (सींचना) मेहति। मिमेह। मिमेहिथ। मेढा। मेक्ष्यति। मेक्षति। मेक्षाति। मेहति। मेहाति। मेहतु। अमेहत्। मेहेत्। मिह्यात्। अमिक्षत् (२०७) क्स। अमिक्षाताम्। अमिक्षन्। अमेक्ष्यत्। इति स्कन्दादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः। ये अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

[कित] निवासे रोगापनयने च (निवास और रोगों को हटाना) (२६७) सूत्र से सन् और द्वित्व (२६८) होकर । चिकित्सति । इस धातु का सन्नन्त में केवल रोगापनयन ही अर्थ घटता है । और विपूर्वक सन्नन्त केवल संशय अर्थ में ही आता है । विचिकित्सति । संदेहं करोतीत्यर्थः । और निवास अर्थ में चुरादिस्थ होने से णिच् होकर केतयति प्रयोग बनता है । चिकित्साञ्चकार । चिकित्साम्बभूव । चिकित्सामास । चिकित्सिता चिकित्सिषति । चिकित्सिषाति । चिकित्सतु । अचिकित्सत्। चिकित्सेत् । चिकित्स्यात् । अचिकित्सीत्। अचिकित्सिष्यत् । उदात्तः परस्मैपदी। यह धातु सेट् परस्मैपदी है परन्तु कोई २ लोग इस को आत्मनेपदी भी कहते हैं उन के मत में । चिकित्सते। चिकित्साञ्चक्रे आदि रूप होगें ॥

इतो वहत्यन्ताः स्वरितेतः । अब यहां से वह धातु पर्य्यन्त स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) अन्यत्र परस्मैपद होते हैं [दान] खण्डने (काटना) [शान] तेजने (तीक्ष्ण करना) इन दोनों धातुओं से सन् और अभ्यास को दीर्घ (२६९) और द्वित्व (२६८) होकर । दीदांसते । दीदांसति । शीशांसते । शीशांसति । दीदांसाञ्चक्रे । दीदांसाञ्चकार । दीदांसितासे । दीदांसितासि । अदीदांसिष्ट । अदीदांसीत् । ये दोनों धातु सेट् हैं [डुपचष्] पाके । इस धातु के डु और ष् इत् जाते हैं । पचते । पचति । पचतः । पचन्ति । पपाच । पेचतुः । पेचिथ । पपक्थ । पेचे । पेचाते । पक्तासे । पक्तासि । पक्ष्यते । पक्ष्यति । पाक्षतै । पाक्षातै । पचतै । पचातै । पाक्षति । पाक्षाति । पचति । पचाति । पचताम् । पचतु । अपचत । अपचत्। पचेत् । पचेत । पक्षीष्ट । पच्यात् । अपक्त । अपक्षाताम् । अपाक्षीत् । अपाक्ताम् । अपाक्षुः । अपक्ष्यत । अपक्ष्यत् [षच] समवाये (संबन्ध करना) यह धातु सेट् है। सचते । सचति । ससाच । सेचतुः । सेचिथ। सेचे। सचितासे । सचितासि । असचिष्ट । असाचीत्। असचीत् । [भज] सेवायाम् (सेवा करना) भजते। भजति । बभाज । भेजतुः । (१६४) एत्वाभ्यासलोप । भेजिथ । बभक्थ । भेजे । भक्तासि । भक्तासे । भक्ष्यते । भक्ष्यति । भक्षीष्ट । भज्यात् । अभक्त । अभाक्षीत् । अभक्ताम् । अभक्ष्यत । [रञ्ज] रागे (रंगना) ॥ २८० ॥

२८१—रञ्जेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २६ ॥

रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप हो शप् परे होतो रजते । रजति । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यते।अरङ्क्त।अराङ्क्षीत्। अराङ्क्ताम्। अरङ्क्ष्यत् । [शप]

आक्रोशे (कोशना) शपते । शपति । शशाप । शेपतुः । शेपिथ । शशप्थ । शप्तासे । शप्तासि शप्स्यते । शप्स्यति । शप्सतै । शाप्सातै । शपतै । शपातै । शाप्सति । शाप्साति । शपति । शपाति शपताम् । शपतु । अशपत । अशपत् । शपेत् । शप्सीष्ट । शप्यात् । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्सत । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्स्यत । अशप्स्यत् । [त्विष] दीप्तौ (प्रकाश) त्वेषते । त्वेषति । तित्वेष । तित्विषतुः । तित्वेषिथ । तित्विषे । त्वेष्टासे । त्वेष्टासि । त्वेक्ष्यते । त्वेक्षतै । त्वेक्षातै । त्वेक्षते । त्वेक्षाते । त्वेषतै । त्वेषातै । त्वेक्षति । त्वेक्षाति । त्वेषति । त्वेषाति । त्वेषताम् । त्वेषतु । अत्वेषत । अत्वेषत् । त्वेषेत । त्वेषेत् । त्विक्षीष्ट (१६३) कित्व होकर (४५) गुण का निषेध हो जाता है, त्विक्षीयास्ताम् । त्विक्षीरन् । अत्विक्षत (२०७) क्स । अत्विक्षाताम् (२०८) क्सलोप । अत्विक्षत । अत्विक्षत् । अत्विक्षताम् । अत्विक्षन् । अत्वेक्ष्यत । अत्वेक्ष्यत् । [यज] देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (विद्वानों का सत्कार, मेल करना और दान करना) यजते । यजति ॥ २८१ ॥

२८२-लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७ ॥

लिट् लकार परे हो तो (२८३) सूत्र में पढ़े वचि आदि और (२८६) सूत्र में कहे ग्रहि आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होवे । इस सूत्र में अभ्यास को सम्प्रसारण कहने से द्वित्व होने पश्चात् सम्प्रसारण होता है । यह सूत्र अकित् विषय में सम्प्रसारण होने के लिये है । यज्+यज्+णल् =इयाज । यहां अभ्यास के यकार को इ हुआ है और कित् विषय में ॥ २८२ ॥

२८३-वचिस्वपियजादीनां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५ ॥

वच, स्वप और यजादि धातुओं को संप्रसारण होवे । यज धातु से ले कर भ्वादि गण के अन्तपर्य्यन्त यजादि समझने चाहियें । यहां द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होता है । इ-अज्-अतुस् (२१९) पूर्वरूप एकादेश होकर द्वित्व की पुनः प्राप्ति होने से इज् मात्र को द्वित्व होता है । इज्+इज्+अतुस्=ईजतुः । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । ईजुः । इयजिथ । इयष्ट (२३३) ष आदेश । ईजथुः । ईज । इयाज । इयज । ईजिव । ईजिम । ईजे । ईजाते । ईजिरे । यष्टासे । यष्टासि । यक्ष्यते । यक्ष्याते । याक्षतै । याक्षातै । यजतै । यजातै । याक्षति । याक्षाति । यजति । यजाति । यजताम् । यजतु । अयजत । अयजत् । यजेत । यजेत् । यक्षीष्ट । इज्यात् (२८३) संप्रसारण । अयष्ट । अयक्षाताम् । अयक्षत । अयष्ठाः । अयाक्षीत् । अयाष्टाम् । अयाक्षुः ।

अयक्ष्यत । अयक्ष्यत् [टु वप] बीजसन्ताने (बीज बोना खेत में वा स्त्री में) छेदने च। यह धातु काटने अर्थ में भी है । वपते । वपाति । पूर्ववत् लिट् में संप्रसारण (२८२) होकर । उवाप । ऊपतुः (२८२) ऊपुः । उवपिथ । उवप्थ । ऊपे । ऊपाते । ऊपिरे । वप्तासे । वप्तासि । वप्स्यति । वप्स्यते । वाप्सते । वाप्सातै । वाप्सति । वाप्साति । वपाति। वपाति । वपताम् । वपतु । अवपत । अवपत् । वपेत । वपेत् ।वप्सीष्ट । उप्यात् (२८३) सम्प्रसारण । अवाप्सीत् । अवाप्ताम् । अवाप्सुः । अवप्त । अवप्साताम् । अवप्सत । अवप्स्यत । अवप्स्यत् [वह] प्रापणे (पहुंचाना) वहति । वहते । उवाह (२८२) ऊहतुः (२८३) ऊहुः । उवहिथ । उवोढ (२३०) अवर्ण को ओकार । ऊहथुः । ऊह । उवाह । उवह । ऊहिव । ऊहिम । ऊहे । ऊहाते । ऊहिरे । वोढासि । वोढासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाक्षतै । वाक्षातै । वक्षतै । वक्षाते । वाक्षते । वाक्षाते । वक्षते । वाक्षाते । वहतै । वहातै । वाक्षति । वाक्षाति । वक्षति । वक्षाति । वहति । वहाति। वहतु । वहताम् । अवहत् । अवहत । वहेत । वहेत् । उह्यात् (२८३) सम्प्रसारण । वक्षीष्ट । अवाक्षत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम् । अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्ष्व । अवाक्ष्म । अवोढ। अवक्षताम् । अवक्षत । अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत । पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः सचतिवर्जम् । सच धातु को छोड़के पच आदि सेट् उभयपदी धातु हैं [वस] निवासे (वसना) वसति । वसतः । वसन्ति । उवास ॥ २८३ ॥

२८४—शासिवसिघसीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६० ॥

इण् और कवर्ग से परे शास, वस और घस धातु के सकार को षकार आदेश होवे घस धातु का । जक्षतुः प्रयोग लिख चुके हैं वहां आदेश का सकार न होने से (५६) सूत्र की प्राप्ति नहीं है इसलिये इस का सम्बन्ध वहां भी समझना चाहिये यहां ऊषतुः वस के सकार को षकार होता है । ऊषुः । उवसिथ । उवस्थ। वस्तासि । वत्स्यति (२१६) स को त होता है । वात्सति । वात्साति । वसति । वसाति । वसतु। अवसत्। वसेत्। उष्यात्। अवात्सीत्। आवात्ताम्। अवात्सुः। अवत्स्यत्। [वेञ्] तन्तुसन्ताने (वस्त्र विनना) वयते । वयति । एकार को अय् आदेश हो जाता है ॥ २८४ ॥

२८५— वेञो वयिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४१ ॥

वेञ् धातु को वयि आदेश विकल्प करके होवे लिट् लकार परे हो तो । वयि

आदेश में इकार उच्चारणार्थ है उस की इत्संज्ञा होकर । वय् + वय्+णल्=उवाय (२८२) अभ्यास को संप्रसारण ॥ २८५ ॥

२८६-ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६ ॥

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, व्रश्चू, प्रच्छ और भ्रस्ज धातुओं को संप्रसारण हो ङित् और चकार से कित्संज्ञक प्रत्यय परे हों तो । वेञ् धातु को वयि आदेश (२८५) होता है उस में व और य दोनों संप्रसारण के स्थानी हैं । वय्-अतुस् । यहां परत्व से यकार को प्राप्त है इसलिये ॥ २८६ ॥

२८७-लिटि वयो यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३८ ॥

लिट् लकार परे हो तो वय धातु के यकार को संप्रसारण न होवे किन्तु ॥ २८७ ॥

२८८-वश्चास्याऽन्यतरस्यां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३९ ॥

कित् लिट् परे हो तो इस वय धातु के यकार को वकार आदेश विकल्प करके होवे । जिस पक्ष में वकार हुआ वहां प्रथम अभ्यास के वकार को संप्रसारण होकर । उव्+उव्+अतुस्=ऊवतुः । ऊवुः । तास् प्रत्यय के परे वयि आदेश के न होने से (१५७) और (१४९) सूत्रों से थल् में इट् का विकल्प नहीं होता किन्तु नित्य इट् । उवयिथ । ऊवथुः । और जिस पक्ष में यकार को वकार (२८८) नहीं हुआ वहां । ऊयतुः । ऊयुः । ऊयथुः । ऊव । ऊय । उवाय । उवय । ऊयिव । ऊयिम । वयि आदेश को स्थानिवत् होने से ञित् होकर आत्मनेपद (१०३) होते हैं यकार को वकारपक्ष में । ऊवे । ऊवाते । ऊविरे । अब जिस पक्ष में वेञ् को वयि आदेश (२८५) नहीं होता वहां एकार को आकारादेश (२४२) होकर अकित्विषय में (२८२) और कित्विषय में (२८३) से संप्रसारण प्राप्त है इसलिये ॥ २८८ ॥

२८९-वेञः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो वेञ् धातु को संप्रसारण न होवे । फिर धेट् आकारान्त के समान । ववौ । ववतुः । ववुः । वविथ । ववाथ । ववथुः । वव । ववौ । वविव । वविम । ववे । ववाते । वविरे । वातासि । वातासे । वास्यति । वास्यते । वयति । वयाति । वासै । वासातै । वयतु । वयताम् । अवयत् । अवयत । वयेत् । वयेत । ऊयात् । वासीष्ट । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवासिषुः (२५१) अवास्त । अवासाताम् । अवासत ।

अवास्यत् । अवास्यत । [व्येञ्] संवरणे । व्ययति । व्ययते । आर्द्धधातुकाविषय में व्येञ् धातु को भी आकारादेश (२४२) प्राप्त है इसलिये ॥ २८९ ॥

२९०—न व्यो लिटि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४६ ॥

व्येञ् धातु को आकार आदेश न होवे लिट् लकार परे हो तो । व्ये+व्ये+णल्= विव्याय। यहां अभ्यास के यकार को संप्रसारण (२८२) परत्व से प्राप्त और उसी का लोप (३८) सूत्र से प्राप्त है । यद्यपि लोपविधि सब विधियों से बलीय है तथापि (उभयेषाम्) ग्रहण (२८२) का यही प्रयोजन होने से कि (३८) से प्राप्त लोप को भी बाध के संप्रसारण ही होवे । अभ्यास के यकार को संप्रसारण होता है । कित्विषय में प्रथम संप्रसारण होकर। वि+वि+अतुस्=विव्यतुः (१५६)यण । विव्युः । विव्ययिथ। (१९९) नित्य इट्। विव्यिथुः । विव्य । विव्याय । विव्यय । विव्यिव । विव्यिम । विव्ये। विव्याते। विव्यिरे । व्यातासि (२४२) आकारादेश । व्यातासे । व्यास्यति । व्यास्यते । व्यासतै । व्यासातै । व्ययतै । व्ययातै । व्यासति । व्यासाति । व्ययति । व्ययाति । व्ययतु। व्ययताम् । अव्ययत्। अव्ययत । व्ययेत् । व्ययेत । वीयात् (२८३) संप्रसारण होकर दीर्घ (१६०) । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम्। अव्यास्त । अव्यास्यत् । (ह्वेञ्) स्पर्द्धायां शब्दे च (ईर्षा और बुलाना) ह्वयति । ह्वयते ॥ २९० ॥

२९१ – अभ्यस्तस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्त होनेवाले ह्वा धातु को द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होवे । अकित्विषय में अभ्यास ही को संप्रसारण प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । संप्रसारण होकर द्वित्व होता है । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः (१५८) संप्रसारण किये उकार को उवङ् होता है। जुहोथ। जुहविथ । जुहुवथुः । जुहुव । जुहाव । जुहव । जुहुविव । जुहुविम । जुहुवे । जुहुवाते । ह्वातासि । ह्वातासे । ह्वास्यति । ह्वास्यते । ह्वासतै । ह्वासातै । ह्वयतै । ह्वयातै । ह्वासति । ह्वासाति । ह्वयति । ह्वयाति । ह्वयतु। ह्वयताम् । अह्वयत् । अह्वयत । ह्वयेत् । ह्वयेत । हूयात् (२८३) संप्रसारण और दीर्घ (१६०) । ह्वासीष्ट ॥ २९१ ॥

२९२—लिपिसिचिह्वश्च ॥ अ०॥ ३ । १ । ५३ ॥

लिप, सिच और ह्वा धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे। अह्वत् (२४४) आकारलोप । अह्वताम् । अह्वन् ॥ २९२ ॥

२९३ — आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५४ ॥

लिप, सिच और ह्वेञ् धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके हो आत्मनेपदविषय में । अह्वत । अह्वेताम् । अह्वन्त । अह्वथाः । अह्वास्त । अह्वासाताम् । अह्वास्यत् । अह्वास्यत । वेञादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयपदिनः । ये वेञ् आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ द्वौ परस्मैपदिनौ। अब दो धातु सेट् परस्मैपदी कहते हैं [वद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) वदति । वदतः। वदन्ति । उवाद (२८२) ऊदतुः । ऊदुः । उवदिथ । वदितासि । वादिष्यति । वादिषति । वादिषाति । वदति। वदाति। वदतु। अवदत्। वदेत् । उद्यात् (२८३) अवादीत् (१३५) वृद्धि । अवादिष्टाम् । अवादिषुः । अवदिष्यत् । [टुओश्वि] गतिवृद्ध्योः (गति और बढ़ना) इस में से टु और ओकार की इत्संज्ञा होती है। श्वयति । श्वयतः। श्वयन्ति ॥ २९३ ॥

२९४ – विभाषा श्वेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३० ॥

लिट् और यङ् परे हों तो श्वि धातु को विकल्प करके संप्रसारण होवे। यङ् के परे संप्रसारण किसी से प्राप्त नहीं है और कित् लिट् में (२८३) से और अकित्-विषय में (२८२) संप्रसारण नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्ताप्राप्त विभाषा इस सूत्र में जानो । सो जिस पक्ष में इस सूत्र से संप्रसारण होता है वहीं अभ्यास को भी (२८२) होता है निषेध पक्ष में अभ्यास को भी नहीं होता। शुशाव । शुशुवतुः । शुशुवुः (१५६) शुशविथ। शुशुवथुः । शुशुव । शुशाव । शुशव । शुशुविव । शुशुविम । सम्प्रसारण के निषेधपक्ष में । शिश्वाय । शिश्वियतुः (१५६) इयङ् । शिश्वयिथ । श्वयितासि । यहां गुण होकर अयादेश होता है । श्वयिष्यति । श्वायिषति श्वायिषाति । श्वयति । श्वयाति । श्वयतु । अश्वयत् । श्वयेत् । शूयात् (२८३) सम्प्रसारण होकर दीर्घ (१६०) लुङ् में अङ् का विकल्प (१५४) होकर अङ्-पक्ष में ॥ २९४ ॥

२९५–श्वयतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १८ ॥

श्वि धातु के इकार को अकार आदेश होवे अङ् परे हो तो । अट् + श्वि + अङ् + तिप् = अश्वत्। यहां अङ् के अकार के साथ पररूप होता है। अश्वताम् । अश्वन् । अश्वः । अश्वतम् । अश्वत । अश्वम् । अश्वाव । अश्वाम । जिस पक्ष में अङ् (१५४) न हुआ वहां चङ् (२४८) और द्वित्व (१८०) होकर। अशिश्वियत् ।

(१५९) इयङ् । अशिश्वियताम् । अशिश्वियन् । अत्र जिस पक्ष में चङ् भी (२४८) न हुआ वहां वृद्धि का निषेध (१६२) होकर । अश्वयीत् । अश्वयिष्टाम् । अश्वयिषुः । अश्वयिष्यत् । वृत् । ये यजादि धातु समाप्त हुए और इस भ्वादि गण को आकृतिगण मानते हैं इसी से । चुलुम्पति आदि प्रयोग समझने चाहियें । इति शब्विकरणा भ्वादयः समाप्ताः । ये शप्विकरणवाले भू आदि धातु समाप्त हुए ॥

२९६ – ऋतेरीयङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २९ ॥

ऋत धातु से ईयङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में । इस धातु का स्वार्थ निन्दा वा कृपा है । और यह सौत्रधातु है अर्थात् किसी गण का नहीं । ऋत् — ईय । इस की धातु संज्ञा (१६७) होकर भ्वादि को आकृतिगण मानने से शप् होता है । ऋतीयते । ऋतीयेते । ऋतीयन्ते । यहां ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुण नहीं होता और ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से ही ऋतीय धातु से आत्मनेपद होते हैं । ऋतीयाञ्चक्रे। ऋतीयामास । ऋतीयाम्बभूव । आर्द्धधातुक की विवक्षा में ईयङ् प्रत्यय (१६८) विकल्प करके होता है । जिस पक्ष में ईयङ् न हुआ वहां । ऋत् + ऋत् + णल् = आनर्त । यहां शेष होने से परस्मैपद । आनृततुः । आनृतुः (१४७) नुट् (११०) अभ्यास को दीर्घ (१०६) अकार । आनर्तिथ । आनृतथुः । ऋतीयितासे । अर्तितासि । ऋतीयिष्यते । अर्तिष्यति । ऋतीयिषते । ऋतीयिषातै । अर्तिषति । अर्तिषाति । ऋतीयताम् । आर्तीयत । ऋतीयेत । ऋतीयिषीष्ट । ऋत्यात् । आर्त्तीयिष्ट । आर्त्तीत् । आर्त्तिष्टाम् । आर्त्तीयिष्यत । आर्त्तिष्यत् ॥ (अद) भक्षणे (खाना) ॥ २९६॥

२९७–अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७२ ॥

अद् आदि धातुओं से परे जो शप् उस का लुक् होवे । जहां २ लुक् कहते हैं वहां २ प्रत्ययमात्र का होता है । अद्+शप्+तिप् = अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः ॥ २९७ ॥

२९८–बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७३ ॥

वेदविषय में अद् आदि धातुओं से परे शप् का लुक् बहुल करके होवे । बहुल के कहने से जिन से परे कहा है उन से परे नहीं भी होता । अदति । हनति । इत्यादि । और जिन से नहीं कहा वहां भी हो जाता है । त्राध्वं नो देवाः । यहां त्रैङ् भ्वादिस्थ धातु से शप् का लुक् हुआ है । त्रायध्वम् । लोक में होता है ॥ २९८ ॥

२९९ – लिट्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश विकल्प करके होवे । जघास ।

घस् + अतुस् (२८४) से उपधालोप होकर उस उपधालोप को चर्विधि के प्रति स्थानिवत् का निषेध होने से घकार को चर् क् होता है उस ककार से परे षत्व (२८४) होकर जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जघस्थ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः । थल् में नित्य इट् (२५८) आदिथ । आदथुः । आद । आद । आदिव । आदिम । अत्ता । अत्तासि । अत्स्यति । अत्सति । अत्साति । अदति । अदाति । अत्तु । अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ॥ २९९ ॥

३००—हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०१ ॥

हु और झलन्त धातुओं से परे जो हि उस को धि आदेश होवे । यहां झलन्त अद् से परे धि होकर । अद्+हि = अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥ ३०० ॥

३०१—अदः सर्वेषाम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०० ॥

अद धातु से परे जो अपृक्त हलादि सार्वधातुक उस को अट् का आगम हो सब आचार्यों के मत में । यह अपृक्त हलादि सार्वधातुक लङ् लकार के तिप् और सिप् दो ही में मिलता है । आट् + अद् + अट्+ तिप् = आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्या+ उस् = अद्युः (८३) पररूपएकादेश । अद्याः । अद्यातम् । अद्यात । अद्याम् । अद्याव । अद्याम । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥ ३०१ ॥

३०२—लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३७ ॥

लुङ् लकार और सन् प्रत्यय परे हों तो अद धातु को घस्लृ आदेश होवे । लृदित् घस्लृ आदेश के पढ़ने से च्लि के स्थान में अङ् (२१७) अघसत् । अघसताम् । अघसन् । आत्स्यात् [हन] हिंसागत्योः (मारना और गति) शप् का लुक् (२९७) हन्ति ॥ ३०२ ॥

३०३—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३७ ॥

उपदेश में जो अनुदात्त (अनिट्) धातु, वन और तनु से लेकर जो धातु हैं उन सब के अनुनासिक का लोप होवे झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । अनुदात्तोपदेश अनुनासिकान्त यम, रम, नम, गम, हन और दिवादिगण का मन ये छः धातु हैं और तनोत्यादि अनुनासिकान्त तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु और

मनु ये नौ धातु हैं और वनति धातु भ्वादिगण का लिया है इन सब के अन्त्य अनुनासिक का लोप जहां२ झलादि कित् ङित् हों वहां २ होता है यहां हन धातु से परे तस् की ङित् संज्ञा (९७) होने से हन्+ तस् = हतः । यहां अनुनासिकलोप हुआ है । हन्–झि ॥ ३०३ ॥

३०४– हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५४ ॥

हन् धातु के हकार को कवर्ग आदेश होवे ञित्, णित् और नकार परे हों तो । यहां झि के झकार को अन्त आदेश होने के पश्चात् उपधा अकार का लोप (२१४) होकर केवल नकार के परे ह को घ घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । हन्+हन्+ णल् = जघान (३०४) णित् के परे ह को कुत्व । जघ्नतुः (२१४) उपधालोप और न के परे ह को कुत्व (३०४) जघ्नुः ॥ ३०४ ॥

३०५–अभ्यासाच्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यास से परे हन धातु के हकार को कुत्व होवे । जघनिथ । जघन्थ । यहां कुत्व (३०४) नहीं प्राप्त है । जघ्नथुः जघ्न । जघान । जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हन्तारौ । हन्तारः । हन्तासि । हनिष्यति । हनिष्यतः (२३८) अप्राप्त इट् हांसति । हांसाति । हंसति । हंसाति । हनति । हनाति । हन्तु । हतात् । हताम् । घ्नन्तु ॥ ३०५ ॥

३०६–हन्तेर्जः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

हन् धातु को ज आदेश होवे हि परे हो तो । अब हन् धातु के स्थान में ज आदेश होने के पश्चात् हि का लुक् (७१) प्राप्त है उस ज आदेश को असिद्ध (४२) मानकर नहीं होता । जहि । हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । यहां हल् नकार से परे अपृक्त तिप् के तकार का लोप होता है । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यात् । हन्याताम् । हन्युः । हन्याः ॥ ३०६ ॥

३०७—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ ३०७ ॥

३०८–हनो वध लिङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४२ ॥

हन् धातु को वध आदेश होवे आर्द्धधातुकविषय में लिङ् परे हो तो । वध

अकारान्त होता है । बध्यात् (१७२) अकारलोप । बध्यास्ताम् । बध्यासुः । बध्याः । बध्यास्तम् ॥ ३०८ ॥

३०९—लुङि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४३ ॥

आर्द्धधातुक विषयक लुङ् परे हो तो भी हन धातु को बधादेश होवे । इस सूत्र का पृथक् निर्देश इस से अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये है । अबधीत् । बध आदेश के अदन्त होने से सिच् के परे अकारलोप (१७२) होकर उस के स्थानिवत् होने से वृद्धि (१३५) नहीं होती । अबाधिष्टाम् । अबाधिषुः । अबधीः । अहानिष्यत् । (२३८) अहनिष्यताम् । अहानिष्यन् । अदिहनी अनुदात्तावुदात्तेतौ परस्मैपदिनौ । अद और हन दोनों धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ चत्वारः स्वरितेतः । अब चार धातु उभयपदी कहते हैं [द्विष] अप्रीतौ (वैर करना) द्वेष्टि । द्विष्टः । द्विषन्ति । द्वेक्षि । द्विष्ठः । द्विष्ठ । द्वेष्मि । द्विष्वः । द्विष्मः । द्विष्टे । द्विषाते । द्विषते । द्विक्षे । द्विड्ढ्वे । द्विषे । द्विष्वहे । द्विष्महे । दिद्वेष । दिद्विषतुः । दिद्विषे । द्वेष्टासि । द्वेष्टासे । द्वेक्ष्यति । द्वेक्ष्यते । द्वेक्षतै । द्वेक्षातै । द्वेषतै । द्वेषातै । द्वेक्षति । द्वेक्षाति । द्वेषति । द्वेषाति । द्वेष्टु । द्विष्टात् । द्विष्टाम् । द्विषन्तु । द्विड्ढि । द्विष्टात् । द्विष्टम् । द्विष्ट । द्वेषाणि । द्वेषाव । द्वेषाम । द्विष्टाम् । द्विषाताम् । द्विषताम् । द्विक्ष्व । द्विषाथाम् । द्विड्ढ्वम् । द्वेषै । द्वेषावहै । द्वेषामहै । अद्वेट् तिप् के तकार का लोप (हल्ङ्या०) होता है । अद्विष्टाम् ॥ ३०९ ॥

३१०—द्विषश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११२ ॥

शाकटायन आचार्य्य ही के मत में द्विष धातु से परे लङ् लकार के झि को जुस् आदेश होवे । अद्विषुः । अन्य लोगों के मत में अद्विषन् । अद्वेट् । अद्विष्टम् । अद्विष्ट । अद्विषम् । अद्विष्व । अद्विष्म । अद्विष्ट । अद्विषाताम् । अद्विषत । द्विष्यात् । द्विष्याताम् । द्विष्युः । द्विषीत । द्विषीयाताम् । द्विषीरन् । द्विषीथाः । द्विष्यात् । द्विष्यास्ताम् । द्विक्षीष्ट । द्विक्षीयास्ताम् । द्विक्षीरन् (१६३) कित्व । अद्विक्षत् । अद्विक्षताम् । अद्विक्षन् (२०७) क्स । अद्विक्षत । अद्विक्षाताम् (२०८) क्सलोप । अद्वेक्ष्यत् । अद्वेक्ष्यत । [दुह] प्रपूरणे (तृप्त करना) ॥ ३१० ॥

३११—दादेर्धातोर्घः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३२ ॥

दकारादि धातुओं के हकार को घकार आदेश हो झल् परे हो वा पदान्त में ।

दुह्+तिप् = दोग्धि (१४१) त को ध और घ को जश्त्व। दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि (२०४) दुग्धः । दुग्ध । दोह्मि । दुह्वः । दुह्मः । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे । दुदोह । दुदुहतुः । दुदोहिथ । दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति । धोक्ष्यते । धोक्षतै । धोक्षातै । दोहतै । दोहातै । धोक्षति । धोक्षाति । दोहति । दोहाति । दोग्धु । दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि । दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दोहाव । दोहाम । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम् । धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । यहां पदान्त में संयोगान्त हल् तकार का लोप होकर कुत्व हो-जाता है । अदुग्धाम् । अदुहन् । अधोक् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अधुग्ध्वम् । दुह्यात् । दुह्याताम् । दुह्युः । दुहीत । दुहीयाताम् । दुहीरन् । दुह्यात् । दुह्यास्ताम् । धुक्षीष्ट (१६३) धुक्षीयास्ताम् । धुक्षीरन् । अधुक्षत् (२०७) क्स । अधुक्षताम् । अधुक्षन् । अधुक्षः । अधुक्षत । अधुक्षाताम् (२०८) अधुक्षन्त । विकल्प से क्स लुक् (२३७) अदुग्ध । अदुग्धाः । अधुक्षथाः । अधुग्ध्वम् । अधुक्षध्वम् । अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत । [दिह] उपचये । (बढ़ना) सब कार्य और प्रयोग दुह के तुल्य जानो । देग्धि । अधिक्षत् । अदिग्ध । अधिक्षत । (लिह) आस्वादने (स्वाद लेना) लिह्+तिप्=लेढि (२०३ । १४१ । २०६) लीढः (२३६) लिहन्ति । लेक्षि (१०५) लीढः । लीढ । लेह्मि । लिह्वः । लिह्मः । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिहे । लिह्वहे । लिह्महे । लिलेह । लिलिहतुः । लिलेहिथ । लिलिहे । लिलिहाते । लिलिहिरे । लीढासि । लीढासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेक्षतै । लेक्षातै । लेक्षति । लेक्षाति । लेढु । लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लीढात् । लीढम् । लीढ । लेहानि । लेहाव । लेहाम । अलेट् । अलीढाम् । लिह्यात् । लिक्षीष्ट । अलिक्षत् । अलिक्षत (२३७) अली-ढ । अलिक्षाताम् । अलिक्षन्त । अलिक्षथाः । अलीढाः । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत । द्विषा-दयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । ये द्विष आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं [चक्षिङ्] व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि (स्पष्ट बोलना और देखना) इस धातु में जो अनुदात्त इकार है उस की इत्संज्ञा हो जाती है फिर अनुदात्तेत् के होने से आत्मनेपद हो ही जाता फिर ङकार पढ़ने से अनुदात्तेत् धातुओं से आत्मनेपदविधान का अनित्य ज्ञापक होता है और इस का इकार अन्त में इत् नहीं गया इस कारण नुम् नहीं होता । चक्ष्+ते = चष्टे (२१०) संयोगादि ककार का लोप । चक्षाते । चक्षते । चक्षे । चक्षाथे । चड्ढ्वे । चक्षे । चक्ष्वहे । चक्ष्महे ॥ ३११ ॥

३१२ — चक्षिङः ख्याञ् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५४ ॥

सामान्य आर्द्धधातुकविषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश होवे ॥ ३१२ ॥

३१३ — वा लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५५ ॥

लिट् लकार में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् विकल्प करके होवे । पूर्व सूत्र से सर्वत्र नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्त विभाषा है । ख्याञ् होकर आकारान्त के समान प्रयोग और ञित् होने से उभयपद (१०३) चख्यौ (२४३) चख्यतुः (२४४) (२४५) चख्युः । चख्यिथ । चख्याथ । चख्ये । चख्याते ॥ ३१३ ॥

३१४—वा०—ख्शादिर्वा ॥

यह ख्याञ् आदेश जो कहा है सो ख्शाञ् आदेश कहना चाहिये । फिर ख्याञ् धातु के प्रयोग किस प्रकार बनने चाहियें ॥ ३१४ ॥

३१५- वा०—असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा ॥

असिद्ध अर्थात् अष्टमाऽध्याय के अन्त के तीन पादों में ख्शाञ् के शकार को विकल्प करके यकार होवे । सो जब यकार होगा तब ख्याञ् के प्रयोग और ख्शाञ् रहेगा वहां ख् को चर्त्व क् होकर । चक्शौ ।चक्शतुः ।चक्शे । चक्शाते । ख्शाञ् आदेश विधान करके असिद्धप्रकरण में शकार को यकार कहने से जो २ कार्य सपाद सप्ताऽध्यायी में ख्या धातु को कहे हैं वे इस को नहीं होते । क्योंकि सपाद सप्ताऽध्यायी में वह ख्याञ् नहीं किंतु ख्शाञ् है । इस प्रकार के कई प्रयोजन महाभाष्यकार ने (३१२) सूत्र पर गिनाये हैं । अब जिस पक्ष में ख्शाञ् आदेश (३१३) नहीं हुआ वहां चचक्षे । चचक्षाते । चचक्षिरे । ख्याताासि। ख्यातासे। क्शातासि। क्शातासे। ख्यास्यति । ख्यास्यते । क्शास्यति । क्शास्यते । ख्यासति । ख्यासाति । क्शासति। क्शासाति । ख्यासतै। ख्यासातै । क्शासतै । क्शासातै। चक्षतै । चक्षातै। चक्षते। चक्षाते । चष्टाम्। चक्षाताम् । चक्ष्व । चक्षाथाम् । चड्ढ्वम् । चक्षै । चक्षावहै । चक्षामहै । अचष्ट । अचक्षाताम् । अचक्षत । अचष्ठाः । अचक्षाथाम् । अचड्ढ्वम् । अचक्षि । अचक्ष्वहि । अचक्ष्महि । चक्षीत । चक्षीयाताम् । चक्षीरन् । ख्यायात् । ख्येयात् । क्शायात् । क्शेयात् । (२५२) एत्वाविकल्प । ख्यासीष्ट । क्शासीष्ट ॥ ३१५ ॥

३१६—अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५२ ॥

असु दिवादिगण का, वच और ख्या अदादि गण के धातुओं से परे च्लि के स्थान में अङ्

होवे। सो जिस पक्ष में यकार होता है वहां अङ् जानो। अख्यत्। अख्यताम्। अख्यन्। अख्यत। अख्येताम्। अख्यन्त। ख्शाञ् पक्ष में। अक्शासीत्। (२५१) अक्शास्त। अख्यास्यत्। अख्यास्यन। अक्शास्यत॥ ३१६॥

३१७—वा० — वर्जने प्रतिषेधः॥

वर्जन अर्थ में चक्षिङ् धातु को ख्शाञ् आदेश न होवे। संचक्षितासे। संचक्षिष्यते। संचक्षिषीष्ट। समचक्षिष्ट। सम् उपसर्ग पूर्वक इस धातु का वर्जन अर्थ होता है। अथ पृच्यन्ता अनुदात्तेतश्चतुर्दश। अब पृची धातु पर्यन्त १४ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ईर] गतौ कम्पने च (गति और कांपना) ईर्त्ते। प्रेर्त्ते। ईराते। ईर्षे। ईराथे। ईर्ध्वे। ईरे। ईर्वहे। ईर्महे। ईराञ्चक्रे। ईरितासे। ईरिष्यते। ईरिषतै। ईरिषातै। ईरतै। ईरातै। ईर्ताम्। ईराताम्। ईरताम्। ऐर्त। ईरीत। ईरीयाताम्। ईरीरन्। ईरिषीष्ट। ऐरिष्ट। ऐरिष्यत। [ईड] स्तुतौ (स्तुति करना) [ईश] ऐश्वर्ये (मालिक का होना) ईट्टे। चत्वें। ईडाते। ईडते। ईट्से। ईष्टे। (२३३) षत्व। ईशाते। ईशते॥ ३१७॥

३१८—ईशः से॥ अ०॥ ७। २। ७७॥

ईश धातु परे जो सार्वधातुक उस को इट् का आगम होवे। ईशिसे॥ ३१८॥

३१९—ईड्जनोर्ध्वे च॥ अ०॥ ७। २। ७८॥

ईश, ईड और जन धातुओं से परे जो से और ध्वे वलादि सार्वधातुक उन को इट् आगम हो। पूर्व सूत्र की यहां सब अनुवृत्ति आती है इन दोनों सूत्रों से बराबर कार्य्य होता है फिर एक सूत्र पढ़ते पृथक् २ पढ़ने से आचार्य्य की विचित्र क्रिया दीख पड़ती है। ईडिषे। ईडाथे। ईडिध्वे। ईडे। ईशे। ईडाञ्चक्रे। ईशाञ्चक्रे। ईडामास। ईडाम्बभूव। ईशामास। ईशाम्बभूव। ईडितासे। ईशितासे। ईट्टाम्। ईडाताम्। ईडताम्। ईडिष्व (३१९) ईशिष्व। ईडिध्वम्। ईशिध्वम्। यहां एकादेश एकार को विकृत मान कर इट् हो जाता है और से ध्वे (३१८। ३१९) एकारान्त पढ़ने से ही लङ् लकार में इट् नहीं होता। ऐट्ट। ऐडाताम्। ऐडत। ऐड्ढ्वम्। ईडीत। ईशीत [आस] उपवेशने (बैठना) आस्ते। आसाते। आसते। आसाञ्चक्रे (१९०) आम्। आसाम्बभूव। आसामास। आसितासे। आसिष्यते। आसिषतै। आसिषातै। आस्ताम्। आस्स्व। आध्वम्। आस्त। आसीत। आसिषीष्ट। आसिष्ट। आसिष्यत [आङः शासु] इच्छायाम्। बहुधा आङ्पूर्वक ही इस धातु

के प्रयोग आते हैं इसलिये आङ् इस के साथ लगा दिया है। आशास्ते। आशासाते। आशासते। आशशासे। अशशासाते। आशासितासे। आशास्ताम्। आशास्व। आशाध्वम्। आशासै। आशासावहै। आशासामहै। आशास्त। आशासीत। आशासिषीष्ट। आशासिष्ट [वस] आच्छादने (ढांकना) वस्ते। वसाते। वसते। ववसे। ववसाते (१२८) एत्वाभ्यासलोप निषेध। वसितासे। वासिष्यते। वासिषतै। वासिषातै। वसतै। वसातै। वस्ताम्। वसाताम्। वस्स्व। वध्वम्। अवस्त। वसीत। वसिषीष्ट। अवसिष्ट। अवासिष्यत [कसि] गतिशासनयोः (गति और शिक्षा) कंस्ते। कंसाते। कंसते। कन्ध्वे। चकंसे। कंस्ताम्। कंस्स्व। कन्ध्वम्। अकंस्त। कंसीत [कस] इत्यन्ये। कस्ते। कसाते। चकसे। चकसाते। कस्ताम्। कस्स्व। कध्वम्। अकस्त। कसीत। अकासिष्ट [कंश] इत्येके। कष्टे (२३३) षत्व। कशाते। चकशे चकशाते। कशितासे। कशिष्यते। कांशिषतै। काशिषातै। कष्टाम्। कशाताम्। कशताम्। कक्ष्व। कड्ढ्वम्। अकष्ट। कशीत। काशिषीष्ट। अकशिष्ट। अकाशिष्यत। [णिसि] चुम्बने। (चूंबना) निंस्ते। निंसाते निनिंसे निंसितासे। निंसिष्यते। निंसिषतै। निंसिषातै। निंस्ताम्। निंस्स्व। निन्ध्वम्। अनिंस्त। निंसीत। निंसिषीष्ट। अनिंस्त। अनिंसिष्यत [णिजि] शुद्धौ। निङ्क्ते। निञ्जाते। निङ्क्ष्वे। निनिञ्जे। निञ्जितासे। [शिजि) अव्यक्ते शब्दे। शिङ्क्ते। शिशिञ्जे। [पिजि] वर्णे (श्वेत आदि) पिङ्क्ते। सम्पर्चन इत्येके। यह धातु किसी के मत में स्पर्श करने अर्थ में है। उभयत्रेत्यन्ये। कोई कहते हैं कि वर्ण और सम्पर्चन दोनों अर्थ हैं। अवयव इत्यपरे। अव्यक्ते शब्द-इतीतरे। किन्हीं के मत में अवयव और कोई के मत में अव्यक्त शब्द अर्थ में पिजि धातु है [पृजि] इत्येके। पूर्वोक्त सब अर्थों में पिजि के स्थान में कोई लोग पृजि धातु कहते हैं। पृङ्क्ते [वृजी] वर्जने [निषेध करना) वृक्ते। वृजाते। वृजते। वृक्षे। वृग्ध्वे। ववृजे। वर्जिता। वर्जिष्यते। वर्जिषतै। वर्जिषातै। वृजतै। वृजातै। वृक्ताम्। वृक्ष्व। वृग्ध्वम्। अवृक्त। वृजीत। वर्जिषीष्ट। अवर्जिष्ट। अवर्जिष्यत [पृची] सम्पर्चने (सम्बन्ध) पृक्ते। पृचाते। ईरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये ईर आदि धातु समाप्त हुए ॥

[षूङ्] प्राणिगर्भविमोचने (गर्भस्थप्राणियों का जन्म) सूते। सुवाते (१५९) उवङ्। सुवते। सुषुवे (१४०) सूत्र में सूति करके इसी सू धातु का ग्रहण है। इस कारण इट् का विकल्प होता है। सुषुविषे। सुषूषे। सुषुविढ्वे। सुषुविध्वे। सुषूढ्वे। सवितासे। सोतासे। सविष्यते। सोष्यते। साविषतै। साविषातै। सविषतै। सविषातै।

साविषते । साविषाते । सविषते । सविषाते । सौषतै । सौषातै । सोषतै । सोषातै । सोषते । सोषाते । सौषते । सौषाते । सुवतै । सुवातै । सुवते । सुवाते । सूताम् । सुवाताम् । सुवताम् । सुवै (११) गुणनिषेध । सुवावहै । सुवामहै । असूत । सुवीत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । सविषीढ्वम् । सविसीध्व । सोषीढ्वम् । असविष्ट । असोष्ट । असविढ्वम् । असविध्वम् । असोढ्वम् । असाविष्यत । असोष्यत । [शीङ्] स्वप्ने (सोना) ङित्वत् (८७) होने से गुण नहीं प्राप्त है इसलिये ॥ ३१९ ॥

३२०—शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २१ ॥

शीङ् धातु को गुण होवे सामान्य सार्वधातुक परे हों तो । यह सूत्र (४५) सूत्र के निषेध का अपवाद है । शेते । शी+आताम् =शयाते । गुण होकर अयादेश होता है ॥ ३२० ॥

३२१—शीङो रुट् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६ ॥

शीङ् धातु से परे झकार के स्थान में जो अत् आदेश उस को रुट् का आगम होवे । टित् आगम उस की आदि में होकर । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । (१५६) यण् । शिशियढ्वे । शिशियध्वे । शयितासे । शयिष्यते । शायिषतै । शायिषातै । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । शेष्व । शयाथाम् । शेध्वम् । शयै । शयावहै । शयामहै । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । शयिषीढ्वम् । शयिषीध्वम् । अशयिष्ट । अशयिढ्वम् । अशयिध्वम् । अशयिष्यत । आत्मनेभाषावुदात्तौ । शीङ् और सूङ् दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ स्तौत्यन्ताः परस्मैपदिनो द्वादश । अब स्तु धातु पर्यन्त १२ बारह धातु परस्मैपदी कहते हैं [यु] मिश्रणे अमिश्रणे च (मिलाना वा पृथक् करना) ॥ ३२१ ॥

३२२—उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८९ ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो लुक् विषय में उकारान्त अङ्ग को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्तसंज्ञक उकारान्त को पूर्वोक्त लक्षणों में भी वृद्धि न होवे । यु+ तिप्= यौति । युतः । युवन्ति (१५९) यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयविथ । यवितासि । यविष्यति । याविषाति । याविषाति । यविषति । यविषाति । यवति । यवाति । यौतु । युतात् । युहि । यवानि । यवाव । यवाम । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । अयौः । अयुतम् । अयुत । अयवम् । युयात् । यहां विशेष विधायक जो यासुट्

को क्ङित्व (७८) है वह पित् का बाधक होने से वृद्धि (३२२) नहीं होती । युयाताम् । युयुः । यूयात् । (११०) दीर्घ । अयावीत् । अयाविष्टाम् । अयाविषुः । (१५८) अयाविष्यत् [णु] स्तुतौ । नौति । नौषि । नौमि । नवितासि । नाविषति । नाविषाति । नौतु । अनौत् । नुयात् । नूयात् । अनावीत् । अनविष्यत् [रु] शब्दे ॥३२२॥

३२३—तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९५ ॥

तु, रु, स्तु, शम और अम धातुओं से परे जो हलादि सार्वधातुक उस को विकल्प करके इट का आगम होवे (अम,गत्यादिषु) यह धातु भ्वादि गण में लिख चुके हैं । उससे परे वेद में शप् का लुक् (२९७) होने पश्चात् हलादि सार्वधातुक मिलता है । अभ्यमीति । अभ्यमति । प्रयोग होंगे । और शम धातु दिवादि गण का है । रु+ईट+तिप् =रवीति । रौति । रुवीतः । उवङ् (१५९) रुतः । रुवन्ति । यहां हलादि के न होनेसे ईट् न हुआ । और इस सूत्र में सार्वधातुक की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती थी फिर सार्वधातुक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि अपित् सार्वधातुक में भी हो जावे । रवीषि । रौषि । रुवीथः । रुथः । रुवीथ । रुथ । रवीमि । रौमि । रुवीमः । रुमः । रवीतु । रौतु । अरवीत् । अरौत् । [टुक्षु] शब्दे । क्षौति । क्षुतः । चुक्षाव । क्षौतु । क्षूयात् । शेष यु के समान [क्ष्णु] तेजने (तीक्ष्ण करना) क्ष्णौति । क्ष्णुतः । चुक्ष्णाव । क्ष्णूयात् । अक्ष्णावीत् [ष्णु] प्रस्रवणे (झरना) स्नौति । सुस्नाव । स्नविता । स्नौतु । स्नूयात् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । यु आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ऊर्णुञ्] आच्छादने (ढांकना) ॥ ३२३ ॥

३२४—ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९० ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे । (३२२) सूत्र से नित्य वृद्धि प्राप्त है इसलिये यह प्राप्तविभाषा जानो । ऊर्णौति ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । यहां हलादि के न होने से वृद्धि नहीं होती । ऊर्णौषि । ऊर्णोषि । ऊर्णुते । ऊर्णवाते । ऊर्णुवते । ऊर्णु धातु के इजादि गुरुमान् होने से लिट् में आम् प्रत्यय (१००) प्राप्त है इसलिये ॥ ३२४ ॥

का०—वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम् ।
आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

ऊर्णुञ् धातु को णुवत्भाव कहना चाहिये । अर्थात् जैसे एकाच् हलादि

(णु, स्तुतौ) धातु को कार्य्य होते हैं वैसे इस को भी होवें। प्रयोजन यह है कि एक तो यङ् प्रत्यय एकाच् हलादि से होता है वह इससे भी होवे और इजादि गुरुमान् के न होने से आम् प्रत्यय (१००) न होवे। और (श्रुचकः किति) सूत्र में उगन्त एकाच् धातुओं से परे कित् आर्द्धधातुक को इट् का निषेध कहा है सो इस को भी एकाच् मानकर निषेध हो जावे। ऊर्णुतः। ऊर्णुवान्। इत्यादि में। अब यहां आम् का निषेध होकर। ऊर्णु-णल्। यहां णु को वृद्धि होकर अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव र्णु मात्र को द्वित्व (३५। ३६) प्राप्त है इसलिये ॥ ३२५ ॥

३२६–न न्द्राः संयोगादयः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३ ॥

अच् से परे संयोग के आदि जो न द और र इन को द्वित्व न होवे इस से रेफ को द्वित्व का निषेध होकर णु शब्द को द्वित्व होता है। ऊर्णुनाव। रेफ को द्वित्व हो जाता तो अभ्यास का आदि हल् वही रेफ है उस से परे अन्य हल् णकार का लोप (३८) हो जाता। ऊर्णुनवतुः। ऊर्णुनुवुः ॥ ३२६ ॥

३२७–विभाषोर्णोः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३ ॥

ऊर्णु धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो विकल्प करके ङित्वत् हो। ऊर्णुनुविथ। ङित् पक्ष में गुण का निषेध (४५) ऊर्णुनविथ। ऊर्णुनुवे। ऊर्णुनुवाते। ऊर्णुनुविषे। ऊर्णुनविषे। ऊर्णुवितासि। ऊर्णवितासि। ऊर्णुवितासे। ऊर्णवितासे। ऊर्णुविष्यति। ऊर्णविष्यति। ऊर्णुविष्यते। ऊर्णविष्यते। ऊर्णुविषति। ऊर्णुविषाति। ऊर्णुविषत्। ऊर्णुविषात्। ऊर्णविषति। ऊर्णविषाति। ऊर्णविषति। ऊर्णविषाति। ऊर्णवति। ऊर्णवाति। ऊर्णुविषतै। ऊर्णुविषातै। ऊर्णुविषते। ऊर्णुविषाते। ऊर्णविषतै। ऊर्णविषातै। ऊर्णविषतै। ऊर्णविषातै। ऊर्णोतु। ऊर्णोतु। ऊर्णुतात्। ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु। ऊर्णुहि। ऊर्णुतात्। ऊर्णुतम्। ऊर्णुत। ऊर्णवानि। ऊर्णवाव। ऊर्णवाम। ऊर्णुताम्। ऊर्णुवाताम्। ऊर्णुवताम्। ऊर्णुस्व। ऊर्णवै। ऊर्णवावहै। ऊर्णवामहै ॥ ३२७ ॥

३२८–गुणोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णुञ् धातु को गुण हो अपृक्त हलादि सार्वधातुक परे हो तो। अपृक्त विषय में भी वृद्धि (३२४) प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है। और्णोत्। और्णोः। और्णवम्। और्णुत। और्णुवाताम्। और्णुवत। ऊर्णुयात। ऊर्णुयाताम्। ऊर्णुयुः। ऊर्णुवीत। ऊर्णुवीयाताम्। ऊर्णूयात् (१६०) दीर्घ। ऊर्णुविषीष्ट। ऊ[illegible]ष्ट। ऊर्णविषीढ्वम्। ऊर्णविषीध्वम् ॥ ३२८ ॥

३२९—ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६ ॥

परस्मैपदविषय में इडादि सिच् परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे। पक्ष में गुण हो जाता है । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णाविषुः । और्णुवीत् । और्णुविष्ट । और्णविष्ट । और्णुविष्यत् । और्णविष्यत् । और्णुविष्यत । और्णविष्यत [द्यु] अभिगमने (सन्मुख चलना) (३२२) वृद्धि । द्यौति । द्युतः । दुद्याव । दुद्युवतुः । दुद्यविथ । द्योतासि । द्योष्यति । द्यौषति । द्यौषाति । द्योषति । द्योषाति । द्यवति।द्यवाति ।द्यौतु । द्युहि । द्यवानि । अद्यौत् । द्युयात् ।द्यूयात्। अद्यौषीत्। (१५८) वृद्धि। अद्योष्यत् । [षु] प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पत्ति और संपत्ति का होना) सौति । सोता । सौतु ॥ ३२९ ॥

३३०—स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु*॥ अ० ॥ ७ । २ ७२ ॥

स्तु, सु और धूञ् धातु से परे जो सिच् उस को इट् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । असावीत् । असाविष्टाम् । असाविषुः । असावीः (१५८) वृद्धि [कु] शब्दे। कौति । चुकाव । कोता । कोष्यति । कौषति । कौषाति । कौतु । अकौत् । कुयात् । कूयात् । अकोषीत् । अकोष्यत् । [तु] गतिवृद्धिहिंसासु । तौति । तवीति (३२३) तुवीतः । तुतः। तुवन्ति । तुताव । तुतुविथ । तुतोथ । तोतासि । तोष्यति । तौषति तौषाति । तवीतु । तौतु + तुवीतात् । तुतात् । तुवीताम् । तुताम् । अतवीत् । अतौत् । अतवीः । अतौः । तुयात् । तुवीयात् । तुवीयाताम् । तुवीयुः । तूयात् ।तूयास्ताम् । अतौषीत्।अतौष्टाम् । अतोष्यत् । ये द्यु आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [ष्टुञ्] स्तुतौ ।स्तवीति । (३२३) स्तौति।स्तुवीतः। स्तुतः । स्तुवीते । स्तुवाते। स्तुवते । स्तुवीषे। स्तुषे। स्तुवीध्वे ।स्तुध्वे। स्तुवे ।स्तुवीवहे ।स्तुवहे । स्तुवीमहे । स्तुमहे । तुष्टाव।तुष्टुवतुः । तुष्टुवुः ।तुष्टोथ (१४८) इट् निषेध ।स्तोतासि । स्तोतासे । स्तोष्यति । स्तोष्यते । स्तौषति । स्तौषाति । स्तोषति । स्तोषाति । स्तौषतै स्तौषातै । स्तोषते । स्तोषाते । स्तोतु । स्तवीतु । स्तुवीताम् । स्तुताम् । अस्तवीत् । अस्तौत् । अस्तुवीत । अस्तुत ।अस्तुवीयात् । स्तुयात् । स्तुवीत। स्तुवीयाताम्। स्तूयात्। स्तूयास्ताम् । स्तोषीष्ट । स्तोषीढ्वम् । अस्तावीत् (३३०) इट् । अस्ताविष्टाम् ।अस्ताविषुः । अस्तावीः (३३०)

* इस सूत्र को भट्टोजिदीक्षित ने भ्वादिगण के सु धातु पर लिखा है सो स्तु धातु के साहचर्य से लुग्विकरण अदादि के सु धातु का ग्रहण होना चाहिये इसलिये वहां लिखना ठीक नहीं है।

सूत्र में परस्मैपद के कहने से आत्मनेपद में इट् नहीं होता। अस्तोष्ट। अस्तोषाताम्। अस्तोषत। अस्तोष्यत्। अस्तोष्यत [ब्रूञ्] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) ॥३३०॥

३३१—ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥अ०॥३।४।८४॥

ब्रूञ् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपद संज्ञक आदि के तिप् आदि पांच वचनों को णल् आदि पांच आदेश यथासंख्य करके होवें और उन्हीं आदेशों के सम्बन्ध में ब्रूञ् धातु को आह आदेश हो जावे। इस सूत्र में दूसरी वार ब्रू धातु इसलिये पढ़ा है कि आह आदेश किसी प्रत्यय के स्थान में न हो जावे। ब्रू+तिप्=आह। आहतुः। आहुः। प्राहुः। आह+थल् ॥ ३३१ ॥

३३२—आहस्थः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३५ ॥

आह धातु के हकार को थकार आदेश होवे झल् परे हो तो। आत्थ। प्रथम थकार को चर्त्व तकार हो जाता है। आहथुः (३३१) सूत्र में आदि के पांच वचनों के कहने से ब्रूथ। यहां प्रत्यय और धातु को आदेश नहीं होते ॥ ३३२ ॥

३३३—ब्रुव ईट् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रूञ् धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक उस को ईट् का आगम होवे। ब्रवीति। आत्थ। यहां ब्रूञ् को स्थानिवत् मानने से ईट् प्राप्त है परन्तु (३३२) सूत्र से हकार को थकार विधान सामर्थ्य से नहीं होता। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रवीषि। ब्रूथः। ब्रूथ। ब्रवीमि। ब्रूवः। ब्रूमः। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते ॥ ३३३ ॥

३३४—ब्रुवो वचिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५३ ॥

आर्द्धधातुक विषय में ब्रूञ् धातु को वचि आदेश होवे। इकार व्यंजन की सहायता के लिये है। वच्+वच्+णल्=उवाच (२८२) सम्प्रसारण। ऊचतुः। ऊचुः। (२८२) उवचिथ। उवक्थ। ऊचे। ऊचाते। ऊचिरे। वक्तासि। वक्तासे। वक्ष्यति। वक्ष्यते। वाक्षति। वाक्षाति। वक्षति। वक्षाति। ब्रवति। ब्रवाति। वाक्षतै। वाक्षातै। वक्षतै। वक्षातै। वक्षते। वक्षाते। ब्रवतै। ब्रुवातै ब्रुवते। ब्रुवाते। ब्रवीतु। ब्रूतात्। ब्रूताम्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि। ब्रूतात्। ब्रूतम्। ब्रूत। ब्रवाणि। ब्रवाव। ब्रवाम। ब्रूताम्। ब्रुवाताम्। ब्रुवताम्। ब्रवै। ब्रवावहै। ब्रवामहै। अब्रवीत्। अब्रूताम्। अब्रुवन्। अब्रूत। ब्रूयात्। ब्रूयाताम्। ब्रूयुः। ब्रुवीत। ब्रुवीयाताम्। ब्रुवीरन्। उच्यात् (३३४) वचि (२८२) सम्प्रसारण। उच्यास्ताम्। वक्षीष्ट। लुङ् में अङ् (३१६) होकर ॥३३५॥

३३५ – वच उम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २० ॥

अङ् परे हो तो वच् धातु को उम् का आगम होवे । मित् आगम अन्त्य अच् से परे होकर । अट्+व –उम् च्+अङ्+तिप् = अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् । अवोचत । अवोचेताम् । अवोचन्त । अवदयत् । अवदयत । आशिषि लिङ् में वच आदि कई धातुओं के प्रयोग वैदिक विषय में कुछ विशेष होते हैं ॥ ३३५ ॥

३३६ –लिङ्याशिष्यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में लिङ् परे हो तो वेदविषय में सामान्य धातुओं से अङ् प्रत्यय होवे ॥ ३३६ ॥

३३७- छन्दस्युभयथा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

वेदविषय में जिन प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा कही है उन की आर्द्धधातुक और जिन की आर्द्धधातुक संज्ञा कही है उन की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे । प्रकृत में आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा (८४) कह चुके हैं उस की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे (भा०–स्थागागमिवचिविदिशकिरुहयः प्रयोजनम्) स्था, गा, गम, वच, वद, शक और रुह इन धातुओं से बहुधा आशिष् लिङ् में अङ् होता है । यह नियम नहीं है कि इन्हीं धातुओं से होवे अन्य से नहीं (स्था) उपस्थ + अङ् + यासुट् + मिप् = उपस्थेयम् (२४४) आकारलोप और सार्वधातुक संज्ञा मान के इय् आदेश (८१) (गा) गै धातु भ्वादिगण में लिख चुके हैं उसी को यहां जानो । उपगा + अङ् + यासुट् + अम् = उपगेयम् । पूर्ववत् (गम) गम् + अङ् + इय् + मस् = गमेम । यहां लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से इय् और अङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा मान के गम् को छकारादेश (२७३) नहीं होता (वच) वउम्च् + अङ् + यास् + मस् = वोचेम (विद) विद् + अङ् + इय् + मिप् = विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् (शकि) शक्+अङ् + इय् +मिप्=शकेयम् (रुह)रुह्+अङ्+इय्+मिप्=रुहेयम् ॥ ३३७॥

३३८-दृशेरग्वक्तव्यः ॥

दृश धातु से अक् प्रत्यय कहना चाहिये । दृश्+अक् + इय् + अम् = दृशेयम् जो यहां (३३६) सूत्र से अङ् होता तो अकित् होने से अम् (२७८) हो जाता इसलिये अक् पढ़ा है ॥

अथ शास्त्यन्ताः परस्मैपदिनः । इङन्त्वात्मनेपदी । अब शासु धातुपर्यंत परस्मैपदी

कहते हैं परन्तु इङ् धातु एक आत्मनेपदी है [इण्] गतौ । एति । इतः ॥ ३३८ ॥

३३९—इणो यण् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

इण् धातु को यण् आदेश होवे अच् परे हो तो । यन्ति । यह सूत्र इयङ् (१५९) का अपवाद है । इ+णल् = इयाय । यहां इकार को ऐकार वृद्धि और ऐ को द्वित्व होकर इयङ् (१५३) होता है ॥ ३३९ ॥

३४० — दीर्घ इणः किति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६९ ॥

इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ आदेश होवे कित् लिट् परे हो तो । इ—अतुस् । इस अवस्था में यण् होकर । यण् को स्थानिरूप (२४५) मानकर द्वित्व होता है । ईयतुः । ईयुः। इययिथ । इयेथ। ईयथुः । ईय । इयाय । इयय । ईयिव । ईयिम । एतासि । एष्यति । ऐषाति । ऐषाति । एषति । एषाति । अयति । अयाति । एतु । इतात् । इताम् । यन्तु (३३९) यण् । इहि । इतात् । इतम् । इत । अयानि । अयाव । अयाम । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ऐः । ऐतम् । ऐत । आयम् । ऐव । ऐम । इयात् । इयाताम् । इयुः । ईयात् (१६०) दीर्घ । ईयास्ताम् ॥ ३४० ॥

३४१ —एतेर्लिङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्ग से परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व होवे कित् लिङ् परे हो तो । उदियात् समियात् । अन्वियात् । सम् + आ + इ + यासुट् +तिप् = समेयात् । यहां एकार अण् नहीं है इसलिये ह्रस्व नहीं होता ॥ ३४१ ॥

३४२—इणो गा लुङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४५ ॥

इण् धातु को गा आदेश होवे लुङ् लकार परे हो तो । गा होकर सिच् का लुक् (८९) सूत्र में गाति करके यही गा आदेश लिया जाता है । अगात् । अगाताम् । अगुः [इङ्] अध्ययने (पढ़ना) इस धातु के प्रयोग नित्य अधि उपसर्गपूर्वक ही आते हैं । अधि+इ+त = अधीते ।सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । अधीयाते ।अधीयते। इयङ् (१५९) अधीषे । अधीयाथे । अधीध्वे । अधीये । अधीवहे ।अधीमहे ॥ ३४२ ॥

३४३—गाङ् लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४९ ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश होवे लिट् लकार की विवक्षा में । अधि+गा+एश्=अधिजगे । यहां प्रथम आकारलोप (२४४) होकर स्थानिरूप (२४५) मान के द्वित्व होता है । अधिजगाते । अधिजगिरे । अधिजगिषे । अध्येतासे । यहां अधि के इकार

को यण् हो जाता है । अध्येष्यते । अध्यैषतै । अध्यैषातै । अध्येषतै । अध्येषातै । अध्यैषते । अध्यैषाते । अध्येषते । अध्येषाते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । यहां परत्व से प्रथम इयङ् (१५९) और पीछे आट् होकर उस के साथ वृद्धि होती है । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यैयाथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येषीष्ट । अध्येषीयास्ताम् । अध्येषीढ्वम् ॥ ३४३ ॥

३४४–विभाषा लुङ्लृङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५० ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे लुङ् और लृङ् लकार परे हों तो । गाङ् आदेश पक्ष में ॥ ३४४ ॥

३४५ – गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ अ० ॥ १ । २ । १ ॥

गाङ् और कुटादि धातुओं से परे जो ञित् णित् भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत् हों । यहां लुङ् में सिच् और लृङ् में स्य ङित्वत् होकर ॥ ३४५ ॥

३४६–घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ अ० ॥ ६ । ४।६६॥

घुसंज्ञक (२४६) मा, स्था, गा, पा, ओहाक् और षो धातु के आकार को ईकारादेश होवे हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो । अध्यगीष्ट । अध्यगीषाताम् । अध्यगीषत । अध्यगीष्ठाः । अध्यगीढ्वम् । जिस पक्ष में गाङ् (३४४) न हुआ वहां । अध्यैष्ट । अध्यैषाताम् । अध्यैढ्वम् । अध्यगीष्यत । अध्यगीष्येताम् । अध्यागीष्यन्त । अध्यैष्यत । [इक] स्मरणे (स्मरण करना) यहभी धातु अधि उपसर्गपूर्वक ही है इस में कारकविषयक (अधीगर्थदयेशां कर्मणि) सूत्र का प्रमाण है । अध्येति । अधीतः । अधीयन्ति । अध्येषि । अधीयाय । अधीयतुः । अधीयुः। अध्येतासि । अध्येष्यति । अध्यैषति । अध्यैषाति । अध्येषति । अध्येषाति । अध्येतु । अधीतात् । अधीताम् । अधीयन्तु । अधीहि । अध्ययानि । अध्ययाव । अध्ययाम । अध्यैत् । अध्यायन् । अध्यैः । अध्यायम् । अधीयात् । अधीयाताम् । अधीयुः । अधीयात् । अधीयास्ताम् ॥ ३४६ ॥

३४७—वा०—इण्वदिक इति वक्तव्यम्॥ ॥

आर्द्धधातुक अधिकार में इक् धातु को इण् के तुल्य कार्य होवें अर्थात् लुङ् लकार में जो इण् धातु को गा आदेश (३४२) कहा है सो इक् को भी होवे। अध्यगात् । अध्यगाताम् । अध्यगुः । अध्येष्यत् [वी] गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना) वेति । वीतः । वियन्ति (१५९) इयङ् । वेषि । विवाय । विव्यतुः । विव्युः विवयिथ । विवेथ । वेता । वेष्यति । वैषति । वैषाति । वेषति । वेषाति । वयति । वयाति । वेतु । वीतात् । वीहि । वयानि । अवेत् । अवीताम् । अवियन् । अवेः । वीयात् । वीयाताम् । वीयुः । वीयास्ताम् । अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवेष्यत् । इस वी धातु में मिला उन्हीं अर्थों में ई धातु भी मानते हैं । एति । ईतः । इयन्ति । इयाय । ईयतुः । एता । एष्यति । ऐषति । ऐषाति [या] प्रापणे (प्राप्त होना) याति । यातः । यान्ति । ययौ । ययतुः । ययुः । ययिथ । ययाथ । यातासि । यास्यति यासति । यासाति । यातु । अयात् । अयाताम् ॥३४७॥

३४८—लङः शाकटायनस्यैव ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १११ ॥

आकारान्त धातु से परे जो लङ् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे शाकटायन आचार्य ही के मत में । अयुः (८३) पररूपएकादेश । अयाः । अयातम् । अयात । अयाम् । अयाव । अयाम । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् । अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः । अयास्यत् [वा] गतिगन्धनयोः (गति और सूचना) वाति । वातः । वान्ति । वासि । ववौ । वातासि । वास्यति । वासति । वासाति । वातु । वाहि । अवात् । अवासीत् । अवास्यत् । [भा] दीप्तौ (प्रकाश) भाति । बभौ [ष्णा] शौचे । स्नाति । सस्नौ । स्नेयात् (१५२) स्नायात् । अस्नासीत् [श्रा] पाके । श्रेयात् । श्रायात् [द्रा] कुत्सायां गतौ च (निन्दा और गति) द्रेयात् [प्सा] भक्षणे (खाना) प्साति । पप्सौ । प्सेयात् । प्सायात् । [पा]

॥ इस वार्तिक को भट्टोजिदीक्षित ने लट् लकार में लगा के और (अधियन्ति) प्रयोग इक् धातु को यण् (३३९) कर के बनाया और पीछे यह भी लिखा है कि कोई लोग इस को आर्द्धधातुक विषय में कहते हैं उन के मत में (अधीयन्) होगा, सो यह महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण माननीय नहीं भाष्यकार ने इस वार्तिक को (३४२) सूत्र पर लिखकर लुङ् लकार के उदाहरण दिये हैं और (३४२) सूत्र भी आर्द्धधातुक अधिकार में होने से लट् लकार में इक् धातु को इणवत् कार्य कदापि नहीं हो सकता फिर (अधियन्ति) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है ॥